प्रेम गंगा

प्रवचन-क्रम

1. विचार का स्वागत.................................................................................2
2. विश्वास से मुक्ति-1........................................................................18
3. विश्वास से मुक्ति-2........................................................................33
4. मोक्ष से मुक्ति...............................................................................47

प्रेम गंगा
पहला प्रवचन

विचार का स्वागत

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल संध्या जीवन-क्रांति के सूत्रों पर पहले सूत्र के संबंध में कुछ बातें की थीं। वह पहला सूत्र थाः अतीत से मुक्ति। जो व्यक्ति पीछे लौट कर देखते रहते हैं वे आगे देखने में असमर्थ हो जाते हैं--और जीवन सदा आगे की ओर है, पीछे की ओर नहीं। जो पीछे है, उसका ही नाम मृत्यु है। पीछे वह है, जो मर चुका है। आगे वह है, जो जीवंत है। पीछे की ओर जिनकी दृष्टि है वे मृत्यु को देखने में संलग्न हो जाते हैं, और जो मृत्यु को देखते हैं वे धीरे-धीरे मर जाएं तो आश्चर्य नहीं।
जीवन का दर्शन आगे है--वहां जहां अभी सूरज उगेगा; वहां जहां फूल अभी खिलेंगे; वहां जहां जीवन होगा। वहां नहीं जहां पद-चिह्न रह गए हैं; जहां हम कभी थे, जहां कभी फूल खिले और जहां कभी सूरज निकला, जहां अब रास्ते की उड़ती धूल रह गई है, वहां जीवन नहीं है। चाहे व्यक्ति हो और चाहे राष्ट्र, पीछे की तरफ देखने वाले लोग धीरे-धीरे जड़ हो जाते हैं। भारत भी इसी भांति जड़ हो गया। इसलिए पहली बात मैंने कहीः पीछे की तरफ देखने से मुक्ति चाहिए। दूसरा सूत्र आज मैं आपसे कहना चाहता हूं।
दिल्ली में पुरी के शंकराचार्य ठहरे हुए थे। एक सुबह एक सज्जन उनके दर्शन को गए और दर्शन के बाद हाथ जोड़ कर उनसे निवेदन कियाः हमारी एक छोटी सी समिति है, जहां हम ब्रह्मज्ञान पर विचार करते हैं, आप कृपा करें और हमारे बीच चल कर हमें उदबोधन दें। शंकराचार्य ने नीचे से ऊपर तक उन्हें देखा और कहाः कोट-पतलून और टाई पहन कर ब्रह्मज्ञान पाने की कोशिश कर रहे हो? तो हमारे ऋषि-मुनि नासमझ थे जिन्होंने कोट-पतलून और टाई नहीं पहनी? वह व्यक्ति तो घबड़ा गया होगा। आस-पास दस-बीस और लोग बैठे होंगे। इस देश में नासमझों की तो कोई कमी नहीं है, वे कहीं भी इकट्ठे हो जाते हैं। वे सब मुग्ध-भाव से प्रसन्न हुए होंगे कि शंकराचार्य ने कितनी अदभुत ज्ञान की बात कही है। और तब शंकराचार्य ने कहा कि कृपा करके अपनी टोपी निकालिए, टोपी के भीतर चोटी है या नहीं? अगर चोटी नहीं है तो ब्रह्मज्ञान कभी भी नहीं हो सकता। और बात यहीं तक नहीं रुकी। जो अंतिम बात उन्होंने कही वह तो बहुत हैरानी की है, और यह अगर मैंने किसी और से सुनी होती तो शायद मैं विश्वास भी नहीं करता, लेकिन कल्याण ने यह पूरी कथा छापी है और बड़ी प्रशंसा से छापी है। तीसरी बात उन्होंने यह कही कि अंत में अब यह बताइए कि पेशाब खड़े होकर करते हैं कि बैठ कर?
खड़े होकर पेशाब करने वालों को ब्रह्मज्ञान की कोई उपलब्धि नहीं होती?
यह मुझे पहली बार पता चला कि ब्रह्मज्ञान पाने में पेशाब करने के ढंग का भी संबंध है!
ऐसी मूढ़तापूर्ण बातों पर भी हम विश्वास किए चले जाते हैं, ऐसी मूढ़तापूर्ण बातों को भी हम सहे चले जाते हैं। ऐसी मूढ़तापूर्ण बातों पर भी न संदेह पैदा होता है, न विचार पैदा होता है, न विद्रोह पैदा होता है, न हमारे मानस में कोई बगावत आती है, न कोई इनकार होता है।

इससे क्या समझा जाए? क्या हमने सोचना बंद कर दिया है? निश्चित ही शायद हजारों वर्ष हुए तबसे हमने सोचने का श्रम नहीं उठाया है। हम अंधे की तरह विश्वास करने वाली कौम हो गए हैं। और जो कौम आंख बंद करके विश्वास करने लगती है उस कौम का कोई विकास संभव नहीं होगा।
विकास का द्वार हैः विचार। आत्मघात की पद्धति हैः विश्वास। मरना हो,
तो विश्वास करना बहुत उचित है। जीना हो, तो विचार करना जरूरी है। विचार और विश्वास के रास्ते विपरीत रास्ते हैं। और जो देश विश्वास के रास्ते पर चला जाता है, बिलीफ के रास्ते पर चला जाता है, जो कहता है, हमें सोचने की जरूरत नहीं है, हमें तो श्रद्धा करने की जरूरत है; हमें विवेक की जरूरत नहीं है, हमें तो विश्वास की जरूरत है; हमें तो कोई मार्ग दिखाए, हमें तो

कोई बताए कि हम क्या मानें और हम मान लेंगे--ऐसी जिस देश की आत्मा हो जाए, उस देश की आत्मा में जंग लग जाती है। उस देश की आत्मा में जहां विचार की चिंगारी नहीं, जहां संदेह की आग नहीं, जहां सोचने की क्षमता से इनकार कर दिया गया है, वहां कोई क्रांति कैसे हो सकती है?
मैंने सुना है, एक अदभुत व्यक्ति हुआ, उसका नाम था, मुल्ला नसरुद्दीन। उसकी जिंदगी की बहुत सी कहानियां हैं। एक दिन सुबह-सुबह एक वृक्ष पर चढ़ कर वह कुल्हाड़ी से वृक्ष को काट रहा है। और जिस शाखा पर बैठा है, उसी शाखा को काट रहा है। शाखा कट जाएगी तो नीचे गिरेगा, जान खतरे में पड़ सकती है। नीचे से निकलने वाले एक राहगीर ने ऊपर की तरफ आंख उठा कर देखा कि यह पागल क्या कर रहा है? और जब देखा कि गांव का सबसे बुद्धिमान आदमी, मुल्ला नसरुद्दीन यह कर रहा है तो उसने चिल्ला कर कहा कि हद हो गई, अगर कोई मूढ़ ऐसा करता होता तो ठीक था, तुम यह क्या कर रहे हो? जिस शाखा पर बैठे हो उसी को काट रहे हो? गिरोगे, मर जाओगे।
लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन तो अपने को बुद्धिमान समझता था। उसने कहा, जाओ, जाओ अपने रास्ते पर, जो सलाह बिना मांगे दी जाती है वह सलाह कभी ली नहीं जाती। और यह भी कहा कि तुमने मुझे बुद्धू, बुद्धु समझा हुआ है, मेरे पास अपनी बुद्धि है। और वह उस कुल्हाड़ी से लकड़ी को काटता रहा। आखिर वह शाखा कट गई और मुल्ला जमीन पर गिरा। गिरने पर उसे खयाल आया कि वह आदमी ठीक कहता था, मैंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया तो बहुत गलती की।
दौड़ कर वह भागा और दूर जाकर रास्ते पर उस आदमी को पकड़ा और उसके पैर छुए
और क्षमा मांगी और कहा, मुझसे बड़ी भूल हो गई जो मैंने तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं किया। उस आदमी ने कहाः विश्वास का सवाल नहीं था, तुमने विचार ही नहीं किया। यह विश्वास का सवाल नहीं था कि तुम मुझ पर विश्वास करो, यह सवाल था कि तुम विचार करो कि तुम जो कर रहे हो, वह क्या कर रहे हो? लेकिन तुमने विचार करने से इनकार कर दिया। और अब तुम दूसरी भूल कर रहे हो कि अब तुम मेरे पैर पकड़ कर मुझ पर विश्वास करने की कोशिश कर रहे हो। तब भी तुमने विचार नहीं किया था, अब भी तुम विचार नहीं कर रहे हो।
लेकिन नसरुद्दीन ने कहाः छोड़ो ये बातें, अब तो मुझे मेरा गुरु मिल गया। जिसने भविष्य की तक बात बता दी, जिसने यह बता दिया कि तुम गिरोगे वृक्ष से, भविष्य को कौन जानता है! लेकिन तुम भविष्य को भी जानते हो। अब मैं इसलिए आया हूं तुमसे पूछने कि मेरी मौत कब होगी? यह तुम बता दो, क्योंकि तुम भविष्य को जानने वाले हो। उस आदमी ने कहाः मैं कोई भविष्य को जानने वाला नहीं हूं। और वह कोई भविष्य को जानने की बात न थी, सीधी-साफ थी कि जिस शाखा पर बैठ कर कुल्हाड़ी चला रहे हो, अगर उसी को काटोगे तो गिरोगे और चोट खाओगे। लेकिन मुल्ला कैसे मानने वाला था? उसने जोर से पैर पकड़ लिए और कहा कि जब तक मेरी मौत का न बताओगे, मैं तुम्हें छोडूंगा नहीं। माना ही नहीं। तो उस आदमी ने गुस्से में कहा कि अभी मर जाओगे, जाओ।
वह आदमी तो चला गया, मुल्ला ने सोचा कि यह आदमी तो जो भी कहता है ठीक ही कहता है। वह उसी वक्त गिर गया और मर गया। आस-पास से लोग आए और उसको उठा कर उसकी अरथी को मरघट की तरफ ले जाने लगे। लेकिन बीच में एक रास्ता आता था-- दोराहा, जहां से एक रास्ता पश्चिम, एक पूरब की तरफ से जाता था। वे अरथी को ले जाने वाले लोग सोचने लगे कि पूरब से चलें या पश्चिम से, मरघट की तरफ कौन सा रास्ता जल्दी पहुंचाता है? मुल्ला ने ऊपर से सिर उठाया अरथी के और कहा कि मैं मर चुका हूं, अगर मैं जिंदा होता तो तुम्हें बता देता। रास्ता तो पूरब का जो है वही जल्दी पहुंचता है, जब मैं जिंदा था तो पूरब के रास्ते से ही जाता था। लेकिन अब चूंकि मैं मर चुका हूं, मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूं। लोगों ने उसकी अरथी नीचे पटक दी और कहा कि तुम कैसे मूढ़ हो? जब तुम बोल रहे हो तो तुम जिंदा हो। उसने कहाः यह कभी नहीं हो सकता। मैंने अपने गुरु पर विश्वास कर लिया है। और मेरे गुरु कभी भूल नहीं करते, कभी झूठ नहीं बोलते। भविष्य की बातें बता देते हैं। उन्होंने कहा कि तुम अभी मर जाओगे, मैं मर गया। अब मैं जिंदा नहीं हूं। अब कोई लाख कहे, मैं विश्वास नहीं छोड़ सकता। मैं तो अपने गुरु के चरणों को पकड़े हुए हूं, उन्होंने जो कहा है वह ठीक कहा है।

इस मुल्ला नसरुद्दीन पर हमें हंसी आती है। लेकिन शायद हमें पता नहीं
कि वह यह कहानी हम पर हंसने के लिए लिख गया है। हम सबकी हालत ऐसी ही है। जीवन के तथ्यों को देखने की हमारी तैयारी नहीं। वह आदमी जिंदा है, वह आदमी बोल रहा है। लेकिन वह कहता है चूंकि मेरे गुरु ने कह दिया है, इसलिए मैं मर गया हूं। जीवित, जीवंत होते हुए भी, जीते हुए भी इस तथ्य पर देखने की उसकी तैयारी नहीं है। लेकिन जो कहा गया है उस पर विश्वास की तैयारी है। हम भी जो है उसे नहीं देख रहे हैं, जो कहा गया है और जो हमने विश्वास कर लिया है; उसको ही देखे चले जा रहे हैं, उसको ही दोहराए चले जा रहे हैं। और कोई हमें लाख बताए कि जिंदगी कुछ और है, तो भी हम मानने को तैयार नहीं हैं।
हम सबको दिखाई पड़ती है कि चारों तरफ की जो जिंदगी हैः सच है, यथार्थ है। लेकिन हमारी किताबों में लिखा है कि बाहर का जो जगत है, वह माया है। (अस्पष्ट... 23 : 33) हम वही दोहराए जा रहे हैं कि ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है। और जगत चारों तरफ दिखाई पड़ रहा है। चारों तरफ जगत अपने पूरे यथार्थ में मौजूद है। लेकिन किताब में लिखा हुआ है कि जगत माया है और ब्रह्म सत्य है, हम वही दोहराए चले जा रहे हैं। ब्रह्म हमें कहीं पर नहीं दिखाई पड़ रहा, जगत हमें प्रतिपल दिखाई पड़ रहा है।
जो दिखाई पड़ रहा है उसे इनकार कर रहे हैं, जो नहीं दिखाई पड़ रहा है उसकी गवाही भरे चले जा रहे हैं। आश्चर्यजनक है यह बात। और इस भांति का अंधापन लेकर अगर कोई कौम चलेगी तो उस कौम का कोई सुंदर भविष्य नहीं हो सकता है। न अतीत सुंदर था, न वर्तमान सुंदर है और न भविष्य सुंदर हो सकता है।
जीवन कैसा है? जीवन के सत्य कैसे हैं? उन्हें वैसे ही देखना जरूरी है अगर उन्हें बदलना हो। अगर किसी दिन ब्रह्म को भी खोजना हो, तो जगत को माया कह कर उसे नहीं खोज सकते हैं आप। अगर ब्रह्म को भी ख्ल्लजना हो तो जगत में जो सत्य है, उसकी खोज करके ही उसे भी खोजा जा सकता है। सत्य की खोज से ही अंततः हम सत्य तक पहुंच सकते हैं। कल्पनाओं की घोषणाओं से और विश्वासों के अंबार लगा लेने से कुछ भी नहीं हो सकता।
लेकिन हम सब, जो दिखाई पड़ता है उसे, उसे मानने की हमारी उतनी तैयारी नहीं है जो हमें कहा गया है। यह अंधापन दूसरा अवरोध है जो जीवन में क्रांति आने के मार्ग पर बाधा बन कर खड़ा हो गया है। विश्वास से मुक्ति आवश्यक है। और क्यों मुक्ति आवश्यक है? ताकि विचार का प्रवाह, ताकि विचार की प्रक्रिया, ताकि विचार का जन्म हो सके।
विचार और विश्वास के संबंध में थोड़ी बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
विश्वास का अर्थ हैः अंधापन। विश्वास का अर्थ हैः मैं नहीं, दूसरा जो
कह रहा है वह ठीक है। विश्वास का अर्थ हैः अपने को इनकार करना और दूसरे को स्वीकार करना। विश्वास का अर्थ हैः उस चुनौती को इनकार करना जिसने विचार का मौका दिया था। विश्वास का अर्थ हैः समस्या खड़ी है सामने उसे न देखना, समाधान बताया किसी ने उसे ही पकड़ कर दोहराए चले जाना।
मैंने सुना है, जापान के एक छोटे से गांव में दो मंदिर थे। एक पूरब का मंदिर था, एक पश्चिम का मंदिर था। दोनों मंदिरों में बहुत झगड़ा था। जैसा कि मंदिरों में झगड़ा होता है। आज तक पृथ्वी पर ऐसा नहीं हो सका कि मंदिरों में झगड़ा न हो। मंदिर कभी भी मित्रता नहीं बना पाए। मंदिरों के बीच कोई मैत्री नहीं है। मंदिर दुश्मन हैं, और मंदिरों की दुश्मनी बहुत महंगी पड़ी है। क्योंकि जब जमीन पर मंदिर ही दुश्मन हो तो और कौन सी चीजें दोस्त हो सकती हैं?
उन दोनों मंदिरों में भी भारी झगड़ा था। एक मंदिर का पुरोहित दूसरे मंदिर के पुरोहित को देखना भी पसंद नहीं करता था। उन दोनों पुरोहितों के पास दो छोटे बच्चे हैं। दोनों पुरोहितों ने कह रखा है उन बच्चों से कि दूसरे मंदिर के बच्चे के साथ मत बोलना। हम बोलचाल पर नहीं है। हजारों साल से ये मंदिर आपस में नहीं बोलते-चालते हैं। लेकिन बच्चे बच्चे हैं। छोटे बच्चों को बिगाड़ना इतना आसान नहीं है। बूढ़े बिगाड़ने की कोशिश भी करें तो भी काफी समय लग जाता है। बच्चे कभी खेलते हुए एक-दूसरे मंदिर के पास भी पहुंच जाते थे। दोनों मंदिर के बच्चे कभी आपस में बात भी कर लेते थे।

एक दिन रास्ते पर पूरब के मंदिर का बच्चा जा रहा है बाजार की तरफ और पश्चिम के मंदिर के बच्चे ने पूछा, कहां जा रहे हो? उस बच्चे ने कहाः कहां जा रहा हूं? जहां हवाएं ले जाएं। दूसरा बच्चा ठगा खड़ा रह गया, उसे कुछ सूझा नहीं। उसने जाकर अपने गुरु को कहा कि आज दूसरे मंदिर के बच्चे से मैं हार गया हूं। मैंने पूछा था, कहां जा रहे हो? उसने कहा, जहां हवाएं ले जाएं। फिर मुझे कुछ भी न सूझा, उसने ऐसी कठिन बात कह दी। उसके गुरु ने कहाः यह बहुत बुरी बात है, हम कभी उस मंदिर से हारे नहीं। कल तुम फिर पूछना और जब वह कहे जहां हवाएं ले जाएं तो कहना कि अगर हवाएं ठहरी हों और चल न रही हों तो कहीं जाओगे कि नहीं? ताकि तुम जीत कर लौटो और वह हार कर लौटे।
दूसरे दिन वह बच्चा जाकर रास्ते के किनारे तैयार खड़ा हो गया। अब तैयार आदमी कभी भी बुद्धिमान नहीं होते। जो भी रेडीमेड है, और जिनके दिमाग में सब तैयार है, उनमें बुद्धि कभी नहीं होती। बुद्धिमान आदमी के पास बुद्धि होती है, तैयारी नहीं। बुद्धि एक दर्पण है। जिंदगी सवाल खड़ा करती है, बुद्धि के पास उत्तर तैयार नहीं होता, रखा हुआ नहीं होता कि निकाला और दे दिया। बुद्धि समस्या का साक्षात्कार करती है और जवाब पैदा होता है, उत्पन्न होता है; तैयार नहीं होता है।
वह बच्चा खड़ा हो गया रास्ते के किनारे। और तैयार रखे है अपना उत्तर। दूसरा बच्चा निकला, उसने पूछा, कहां जा रहे हो? उस बच्चे ने कहाः जहां पैर ले जाएं।
अब बहुत मुसीबत हो गई। क्योंकि उत्तर की तैयारी थी कि जहां हवाएं ले जाएं तो कह देंगे कि अगर हवाएं बंद हों तो क्या करोगे? लेकिन यह तो नया ही सवाल है कि जहां पैर ले जाएं, अब क्या करोगे? बंधा हुआ उत्तर हमेशा नई समस्या के सामने हार जाता है। समस्या रोज नई हो जाती है, उत्तर पुराना होता है। उत्तर बेतुका हो जाता है, उत्तर की कोई संगति नहीं रह जाती, कोई कंसिस्टेंसी नहीं होती।
वह लड़का फिर हार कर वापस लौट आया। अपने गुरु से कहा कि फिर हार गया, बड़ी मुश्किल हो गई। वह उस मंदिर का लड़का तो बहुत बेईमान है, वह तो बदल गया। कल तो कुछ कहता था, आज कुछ कहता है। उस पुजारी ने कहाः उस मंदिर के लोग हमेशा से बेईमान रहे हैं, उनकी बातों का कोई भरोसा नहीं है। वे हमेशा बदल जाते हैं।
सच तो यह है कि अगर बदलना बेईमानी है तो पूरी जिंदगी बेईमान है, भगवान बेईमान है। और जो नहीं बदलते वे ही ईमानदार हैं अगर, तो मरी हुई चीजें ही सिर्फ ईमानदार हो सकती हैं, जीवन कभी ईमानदार नहीं हो सकता।
लेकिन उस पुजारी ने कहाः फिर तैयार करो उत्तर। फिर भी उन्हें न सूझा
कि तैयार उत्तर हमेशा हार जाते हैं। अब ठीक से तैयार रखो और जब वह कहे कि जहां पैर ले जाएं, तब कहना कि भगवान न करे कि कभी पैर लंगड़े हो जाएं, अगर पैर टूट गए तो फिर क्या होगा? वह लड़का फिर उत्तर तैयार करके उसी रास्ते पर खड़ा हो गया। फिर दूसरे दिन, फिर उस मंदिर से वह युवक निकला। उसने फिर पूछा है, कहां जा रहे हो? तैयार है उत्तर उसके पास आज; लेकिन फिर बदलाहट हो गई। उस लड़के ने कहाः कहां जा रहा हूं? बाजार, साग-सब्जी खरीदने जा रहा हूं। वह बंधा हुआ उत्तर फिर वहीं रह गया। वह हार फिर हो गई।
जीवन है सतत परिवर्तन, जीवन है रोज नया। और विश्वास सब पुराने हैं। कोई विश्वास नया नहीं है। विचार नया हो सकता है, विश्वास कभी नया नहीं हो सकता। न हिंदू का विश्वास नया हो सकता है, न मुसलमान का, न जैन का, न पारसी का, न सिक्ख का। किसी का विश्वास नया नहीं हो सकता, क्योंकि विश्वास आता है अतीत से, विश्वास आता है पीछे से, विश्वास आता है किसी और से। विश्वास है सीखा हुआ उत्तर, विश्वास है रेडीमेड दिमाग।
और जिस आदमी के पास ऐसे तैयार उत्तर हैं वह आदमी जीवंत समस्या का साक्षात्कार करने में असमर्थ हो जाता है। समस्या होती है नई और हम अपने पुराने खजाने में खोज करते हैं कि लाएं उत्तर। और हमें तब बड़ी परेशानी होती है, जब हम पाते हैं कि इसके लिए तो कोई उत्तर नही है तो या तो फिर हम अपने उत्तर के अनुकूल समस्या को शक्ल देने की कोशिश करते हैं, उसमें भी हम

हार जाएंगे। और या फिर हम ठगे खड़े रह जाते हैं अपने समाधान को पकड़े और समस्या आगे बढ़ती चली जाती है। और जिंदगी मुश्किल में पड़ जाती है।
इस देश में ऐसा पिछले तीन-चार हजार वर्षों से निरंतर हुआ है। हमारे पास बहुत समाधान हैं, हमारे पास उत्तर की कमी नहीं है, हमारे पास शास्त्रों की कमी नहीं है, गुरुओं की कमी नहीं है। हमें सब बातें बता दी गई हैं; और हमारे साथ जो दुर्भाग्य है वह यह कि हमने सब बातें कंठस्थ कर ली हैं। और हम उन्हीं बातों के आधार पर जिंदगी में जो भी समस्या खड़ी होती है उसको हल करने की कोशिश करते हैं। हम विचार नहीं करते, हम अपने विश्वास को सामने खड़ा कर लेते हैं। और हमारा विश्वास कुछ भी नहीं कर पाता। क्योंकि विश्वास बासा है, समस्या ताजी और नई है। बासे उत्तर नये प्रश्नों के लिए अर्थहीन हैं।
नये प्रश्नों के लिए नये उत्तर चाहिए। नये उत्तर कहां से आएंगे? विश्वास कभी भी नये उत्तर नहीं दे सकता। नये उत्तर के लिए चाहिए विचार। और विचार का अर्थ हैः दूसरे पर निर्भर नहीं। विचार सदा अपने पर निर्भर होता है। विचार का अर्थ हैः स्वयं सोचना होगा। स्वयं सोचना होगा और इतनी तेजी से सोचना होगा कि समस्या बदल न जाए। नहीं तो हम सोचते बैठे रहें, और समस्या बदल जाए तो हम सोच कर भी निकालेंगे तो किसी अर्थ का नहीं होगा। मन ऐसा चाहिए--इतना विचारपूर्ण, सारे देश का, सारे समाज का, सारी समाज की प्रतिभा ऐसी चाहिए कि वह सोचने में त्वरित, इंटेंस थिंकिंग हो कि चीजें बदल न जाएं और हम देख पाएं।
सुभाष बाबू के एक भाई थे, शरदचंद्र। वे एक बार ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। कोई रात के तीन बजे होंगे, बाथरूम में गए हैं, हाथ-मुंह धो रहे हैं। नींद है, जल्दी अगले स्टेशन उतरना है। तैयारी करनी है, घड़ी खोल कर रख दी है। हाथ-मुंह धोया है, धक्का लगा, घड़ी सरक गई और संडास से नीचे गिर गई। कीमती घड़ी है, किसी मित्र ने पश्चिम से भेजी है। क्या करें? चेन खींची, एक मील गाड़ी आगे सरक आई है। कंडक्टर ने, गार्ड ने कहाः मुश्किल है इस अंधेरी रात में आपकी घड़ी को खोजना। कैसे पता चलेगा, कहां घड़ी है, कहां गिरी है? शरदचंद्र ने कहाः पता चल जाएगा, मैंने जलती हुई सिगरेट उसके पीछे ही डाल दी थी। हवा चल रही है, सिगरेट जल रही होगी। और जहां सिगरेट पड़ी हो उसके एक फीट के आस-पास के घेरे में ही घड़ी होनी चाहिए। ज्यादा फासला नहीं होगा। आदमी दौड़ाया गया, और जलती सिगरेट के पास वह घड़ी पड़ी हुई मिल गई।
लोग पूछने लगे शरदचंद्र से, तुमने कैसे यह पता लगाया कि जलती हुई सिगरेट पीछे डाल दूं? किस किताब में पढ़ा, किस गुरु से पूछा? यह कहां से सीखा उत्तर? शरदचंद्र ने कहाः मेरी आदत ही किसी से कुछ सीखने की नहीं है। जब सवाल खड़ा हो तब पूरे प्राण से उसका मुकाबला करना है, और अगर पूरे प्राण से किसी भी सवाल का मुकाबला किया जाए तो ऐसा कोई सवाल नहीं है जिसका जवाब न हो, और ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका समाधान न हो। और ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो अगर समस्याओं से संघर्ष करे तो उसकी प्रतिभा से उत्तर आने शुरू न हो जाएं। क्योंकि प्रत्येक प्रतिभा के गहरे में स्वयं परमात्मा बैठा हुआ है।
लेकिन हम तो कभी भीतर से पूछते ही नहीं। हम तो पूछते हैं बाहर से, हम
तो पूछते हैं दूसरे से। तो भीतर का परमात्मा तो सोया ही रह जाता है, उसको जगने की कोई जरूरत ही नहीं आती। विश्वास करने वाले आदमी को मैं धार्मिक नहीं कहता। क्योंकि जो आदमी विश्वास करता है उसके भीतर के परमात्मा को जगने का मौका ही नहीं मिलता।
मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूंः जो विचार करता है, और इतना तीव्र विचार करता है कि अपने सारे व्यक्तित्व को विचार की अग्नि में, सारे व्यक्तित्व के साथ कूद पड़ता है सोचने के लिए। उसका रोआं-रोआं, उसका कण-कण, उसके मन की सारी शक्ति सोचने लगती है। तब ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसका समाधान न हो। तब ऐसा कोई सवाल नहीं, जिसका जवाब न हो।
आदमी जो पूछ सकता है, वह आदमी उत्तर दे सकता है। आदमी जिस बात को उलझा सकता है, उसे आदमी सुलझा सकता है। लेकिन विचार की प्रक्रिया से यह संभव है, विश्वास की प्रक्रिया से नहीं। असल में विश्वास सिर्फ विचार से बचने का

उपाय है। जो लोग विचार के श्रम से बचना चाहते हैं, वे विश्वास कर लेते हैं। वे कहते हैंः हम क्यों झंझट में पड़ें, जो जानता हो हम उसकी मानते हैं। और तब, तब वे जो स्वयं जान सकते थे, उसका मौका ही कभी नहीं आएगा। और ध्यान रहे, हम जिन शक्तियों का उपयोग करते हैं वे विकसित होती हैं, और जिनका हम उपयोग नहीं करते हैं वे विकसित नहीं होती हैं, पंगु हो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं।
एक-दो वर्ष तक बैठ जाएं और पैरों को मत चलाएं, फिर पैरों में लकवा लग जाएगा। एक-दो वर्ष तक अंधेरे में बैठ जाएं आंख बंद कर लें, फिर आंखें रोशनी खो देंगी। एक-दो वर्ष तक हम जिस अंग का भी उपयोग नहीं करेंगे, वही अंग व्यर्थ हो जाएगा। और विचार की प्रक्रिया का यह देश हजारों साल से उपयोग नहीं कर रहा है। तो अगर हमारे विचार की क्षमता नष्ट हो गई हो, तो आश्चर्य नहीं है। और हम बचपन से... बच्चा पैदा हुआ तो मां-बाप यह चाहते हैं कि विश्वास करे, स्कूल में गुरु चाहता है विश्वास करे, सारा समाज चाहता है कि विश्वास करे। तो बच्चे के विचार करने की क्षमता को हम विकसित ही नहीं होने देते।
हम सब चाहते हैं कि विश्वास करो। बाप अपने बेटे से कहता है कि हम जो कहते हैं वह ठीक है, हमारा अनुभव है, हमारी उम्र है, हमने जाना है; तुम अभी क्या जानते हो? बाप थोपता है उसके ऊपर कि जो हम कहते हैं वह ठीक है, क्योंकि मैं बाप हूं। अब बाप होने से कोई बात कहीं ठीक होती है? बाप होने से किसी बात के ठीक होने का कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन ठीक हो तो भी बात का ठीक होना, न ठीक होना उतना मूल्यवान नहीं है जितना मूल्यवान यह है कि आप बच्चे की विचार की प्रक्रिया को रोक रहे हैं। आप उसे विश्वास करने के लिए मजबूर कर रहे हैं, आप उसको डरा रहे हैं, धमका रहे हैं, और बच्चा अगर मान लेगा आपकी बात तो इसलिए नहीं कि उसके विचार को जंच गई; इसलिए कि आप पिता हैं, नुकसान पहुंचा सकते हैं, भोजन रोक सकते हैं, चांटा मार सकते हैं, घर के बाहर निकाल सकते हैं। इन भयों के कारण वह आपकी बातें मान लेगा। और उस बच्चे की जिंदगी में विचार तो बंद हो जाएगा, भय की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी।
हम सब डरे हुए लोग हैं। हम सोचते ही नहीं हैं, हम इतने डर गए हैं कि सोचने का सवाल ही नहीं है। अगर हमारे मन में सवाल उठे कि भगवान है? हमें फौरन डर लगता है कि कहीं अगर हमने कहा कि नहीं है तो भगवान नाराज न हो जाए, कहीं नरक न भेज दे।
युनिवर्सिटी में पढ़ रहे हैं लड़के। अगर वैसे आप उनसे पूछिए तो वे बड़े विद्रोह की बातें करेंगे, अगर वैसे आप उनसे पूछिए तो वे किसी पुरानी बात को मानने को राजी नहीं होंगे, लेकिन परीक्षा के वक्त देखिए वे सब आस्तिक हो जाएंगे। हनुमानजी के मंदिर के सामने खड़े हैं। बी.एससी. पढ़ते हैं, एम. एससी. के विद्यार्थी हैं और हनुमानजी से कह रहे हैं कि नारियल चढ़ा देंगे। फियर! जहां भय पकड़ा और आप भी, और हम सब, जब स्वस्थ होते हैं, कोई परेशानी नहीं होती, भगवान-वगवान की हम चिंता नहीं करते। बीमारी आ जाए, दुख आ जाए, नौकरी छूट जाए, और एकदम भगवान की याद आती है। क्यों?
क्योंकि भगवान हमने विचारा थोड़े ही है, भगवान हमारे भीतर भय के साथ संयुक्त होकर बैठ गया है। हमने कुछ सोचा ही नहीं है कभी, हमारे भीतर तो फियर है, भय है। जब भय पकड़ता है बस तब हम हाथ जोड़ने लगते हैं। अभी पता चल जाए कि इंदौर के ऊपर बम गिरना है, फिर देखिए? मंदिरों, मस्जिदों और चर्चों में कितनी भीड़ हो जाएगी? अभी पता चल जाए कि बम गिरने वाला है, आपके घुटने एकदम जमीन में मुड़ जाएंगे, हाथ जुड़ जाएंगे आकाश की तरफ कि बचाओ, हे भगवान बचाओ!
मैंने सुना है, एक फकीर एक नाव से यात्रा कर रहा था। कोई दस-बीस लोग थे नाव में। सारे लोग दूर-दूर से बहुत सा धन कमा कर वापस लौटते थे, व्यापारी थे। कोई सोना लाया था, कोई हीरे-जवाहरात लाया था। बहुत कमाइयां थीं सबके पास। सब प्रतीक्षा में थे, कब नाव जमीन से लग जाए। एकाध दिन की देरी थी और जोर का तूफान आ गया। रात है अंधेरी, तूफान है खतरनाक। लहरें पानी की नाव के भीतर घुसने लगीं। खतरा है, बचना मुश्किल है। वे सारे के सारे, बीस के बीस

लोग हाथ जोड़ कर, घुटने टेक कर अंधेरी रात में भगवान की तरफ आंख बंद किए हाथ जोड़े बैठे हैं, और चिल्ला कर कह रहे हैंः हमें बचाओ! हे भगवान हमें बचाओ! कोई कह रहा है कि मैं अपना सारा धन गरीबों में बांट दूंगा, कोई कह रहा है कि मैं अपने महल को धर्मशाला बना दूंगा, कोई कह रहा है मंदिर बना दूंगा, कोई कह रहा है कि जो भी मैं कमा कर लाया हूं सब जमीन पर अभी जाकर बांट दूंगा, लेकिन मेरे प्राण बचाओ!
उन्होंने, सारे लोगों ने उस फकीर से भी कहा कि तुम भी प्रार्थना करो। तुम तो फकीर हो, संन्यासी हो, तुम्हारी आवाज शायद ज्यादा ठीक से सुनाई पड़े भगवान को। लेकिन वह फकीर बैठा हुआ हंसता रहा, उसने प्रार्थना नहीं की। जब वे सारे प्रार्थना कर रहे थे, तभी वह फकीर एकदम से चिल्लाया कि सावधान! कहीं भय के कारण आश्वासन मत दे देना कि सब दे देंगे; मकान दे देंगे, मंदिर बना देंगे; क्योंकि जमीन दिखाई पड़ रही है, सूरज निकल रहा है। वे सारे के सारे लोग जल्दी से हाथ-पैर छोड़ कर खड़े हो गए--भगवान खत्म! वे वायदे खत्म! वे सब अपना सामान बांधने लगे और उन्होंने उस फकीर से कहाः तुमने अच्छा बचा दिया, हम तो बच गए, नहीं तो हम कह ही दे रहे थे कि सब दे देंगे। जिन्होंने कह दिया था, वे भी कहने लगे, कहने से क्या होता है?
जीवन के किसी सत्य से हमारा विचार का संबंध नहीं है। जीवन का सारा का सारा यह जो हमारा व्यापार है, वह सारा का सारा विश्वास पर और भय पर खड़ा हुआ है। और ध्यान रहे, विश्वास सदा भय पर खड़ा होता है। निर्भय व्यक्ति कभी विश्वास नहीं करता, विचार करता है। फियरलेस, अभय व्यक्ति जो डरता नहीं, वह विचार करता है। सिर्फ डरपोक, कायर विश्वास करते हैं, विचार नहीं करते। इसलिए जो कौम जितना विश्वास करती है, उतनी ही कायर, डरी हुई कौम होती चली जाती है। यह हिंदुस्तान एक हजार साल तक गुलाम रहा, ऐसे ही नहीं। इसकी गुलामी के पीछे मानसिक कारण हैं। यह कौम विश्वास करने वाली कौम है। और विश्वास करने वाली कौम भयभीत कौम होती है। और भयभीत कौम को गुलाम बनाया जा सकता है। असल में जो आदमी विश्वास करता है, वह गुलाम होता ही है मेंटली। मानसिक रूप से वह गुलाम होता है। एक मेंटल स्लेवरी होती है उसकी, वह दूसरे का गुलाम है।
यह देश आज मुक्त तो हो गया है, लेकिन इसकी मानसिक दासता नहीं खो गई है। इसकी मानसिक दासता अपनी जगह खड़ी है। और उस मानसिक दासता के कारण अपनी जगह खड़े हैं। और जिन बीजों से मानसिक दासता पैदा हुई थीं, उनको हम पानी सींच रहे हैं। उनमें सबसे गहरा बीज है विश्वास का। लेकिन हम तो यह कहते हैं कि विश्वास बड़ा ऊंचा गुण है। क्यों कहते हैं यह?
गुरु समझाते हैं कि विश्वास नहीं करोगे तो भटक जाओगे। नेता समझाते हैं कि विश्वास करो। धर्म समझाते हैं विश्वास करो। सब समझाते हैं विश्वास करो। तो मैं यह कौन सी उलटी और गलत बात आपसे कह रहा हूं कि विश्वास नहीं, विचार करो? क्यों सारे लोग विश्वास के लिए कहते हैं? कुछ कारण हैं।
सबसे बड़ा कारण यह है कि अगर आदमियों का शोषण करना हो तो उन्हें विश्वासी बनाना जरूरी है। चाहे वह शोषण राजनीतिक नेता करे, चाहे धर्मगुरु करे, चाहे कोई और करे। जिनका भी शोषण करना हो, उन्हें विश्वास के जहर से उनके दिमाग को सुला देना एकदम जरूरी है। जो भी विश्वास करने लगता है वह किसी का भी गुलाम हो जाता है। वह किसी भी तरह की गुलामी झेल सकता है।
अब हिंदुस्तान में करोड़ों शूद्र हजारों वर्षों से गुलामी झेल रहे हैं। लेकिन किसी शूद्र ने कोई बगावत नहीं की। आश्चर्यजनक मालूम पड़ता है यह! इतने लंबे समय तक, इतने हजारों वर्षों तक करोड़ों-करोड़ों लोग जानवर की तरह जी रहे हैं। न उन्होंने बगावत की, न दूसरे लोगों को कोई बगावत सूझी कि कोई कहता कि नहीं, यह शूद्रों के साथ जो हो रहा है अन्याय है। कोई बगावत करता! नहीं, किसी को कोई खयाल ही पैदा नहीं हुआ।
हिंदुस्तान में हजारों वर्षों से करोड़ों स्त्रियां गुलामी की हालत में हैं, लेकिन न स्त्रियों को कोई खयाल है, न किसी पुरुष को कोई खयाल है कि यह गुलामी है। पति कहलाता है स्वामी, और पत्नी उसके नीचे लिखती है चिट्ठी में--आपकी दासी। और किसी को कोई फिकर नहीं कि यह सब क्या हो रहा है? और

पत्नी समझती है कि बहुत सम्मान में लिख रही है दासी, और पति देव समझते हैं कि बहुत आदर की बात हो रही है यह। यह खतरनाक बात है।
लेकिन गुलामी का, विश्वास का हमारा भाव इतना गहरा और पुराना हो गया कि विचार की कोई किरण ही वहां नहीं फूटती कि हम सोचें, कि हम सोच कर समझने की कोशिश करें। अगर हम सोचेंगे तो क्रांति निश्चित हो जाएगी। विचार विद्रोह है, विचार विद्रोही है। विचार के भीतर छिपी है क्रांति की किरण। इसलिए जिन्हें भी शोषण करना है, वे लोगों को समझाते हैं, विश्वास करो, विचार करने की कोई जरूरत नहीं है। और समाज का पूरा ढांचा, शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, धर्म सब मनुष्य को इस भांति ढालते हैं कि उसके भीतर विचार भर पैदा न हो पाए, बस वह विश्वासी बने। और बड़ा होते-होते उस जगह पहुंच जाए जहां भेड़ें होती हैं, आदमी नहीं।
मैंने सुना है कि एक स्कूल में एक शिक्षक बच्चों को पढ़ा रहा था। और उन बच्चों से उसने पूछा कि मैं तुमसे एक सवाल तुमसे पूछता हूं। और बड़ी हैरानी हुई उस दिन, क्योंकि एक बच्चा जो कभी भी जवाब नहीं देता था, वह जोर से हाथ हिलाने लगा। उस शिक्षक ने पूछा कि अगर एक बगीचे के भीतर बारह भेड़ें बंद हों और एक भेड़ छलांग लगा कर बगीचे के बाहर हो जाए तो भीतर कितनी भेड़ें बचेंगी? तो एक बच्चा जिसने कभी हाथ नहीं हिलाया था, जो कभी उत्तर नहीं देता था वह जोर से हाथ हिलाने लगा। गुरु ने कहाः आश्चर्य, तू तो कभी उत्तर नहीं देता! कितनी भेड़ें बचेंगी? उस लड़के ने कहाः एक भी नहीं। बिल्कुल भी नहीं। उस गुरु ने कहाः पागल, जवाब भी दिया तो ऐसा। मैं पूछ रहा हूं बारह भेड़ें हैं, एक भेड़ छलांग लगा जाए तो कितनी बचेंगी? वह कहने लगा, बिल्कुल नहीं। गुरु ने कहाः आश्चर्य! क्या तुझे गणित के अंक भी नहीं आते? तू बारह का अर्थ भी नहीं समझता? उस बच्चे ने कहाः मैं सब समझता हूं। लेकिन गणित मुझे चाहे कम आता हो, मेरे घर में भेड़ें हैं, मैं भेड़ों को भलीभांति जानता हूं। अगर एक निकल गई तो सब निकल जाएंगी।
यह सवाल गणित का नहीं है, उस बच्चे ने कहा। यह सवाल भेड़ों के स्वभाव का है। और मैं भेड़ों को भलीभांति जानता हूं। आप कहते हैं, एक निकल गई, फिर एक नहीं बचेगी। और भेड़ों को गणित का कोई भी पता नहीं है कि गणित क्या होता है। भेड़ का स्वभाव क्या है? भेड़ का स्वभाव हैः विश्वास। और आदमी के भीतर आदमियत तभी पैदा होती है, जब वह विश्वास से ऊपर उठता है और विचार की किरणों को छूता है। लेकिन आदमी को भेड़ बना कर रखना जरूरी है, अगर उसका शोषण करना हो।
और सारी दुनिया में शोषण चल रहा है। हिंदू क्या हैं, मुसलमान क्या हैं, जैन क्या हैं, ईसाई क्या हैं? ये अलग-अलग गुरुओं के द्वारा शोषित लोगों की जमाते हैं। ये अलग-अलग गुरुओं के शोषण के धंधे हैं। ये अलग-अलग दुकानें हैं, जिन-जिनका शोषण किया गया है। लेकिन एक बड़े मजे की बात है, ईसाई के सिद्धांत अलग हैं, हिंदू के सिद्धांत अलग हैं, मुसलमान के सिद्धांत अलग हैं, सब मामलों में झगड़ा है, लेकिन एक मामले में किसी का झगड़ा नहीं है। इस मामले में किसी का झगड़ा नहीं है कि विश्वास करना चाहिए। इस मामले में सब सहमत हैं। और सारे मामलों में झगड़े हैं। ईश्वर कैसा है, है या नहीं? आत्मा कैसी है? पुनर्जन्म होता है या नहीं? मोक्ष है या नहीं? इन सब मामलों में मतभेद हैं। लेकिन विश्वास के मामले में सारे धर्म राजी हैं कि विश्वास करना चाहिए। श्रद्धा करनी चाहिए। बिलीफ और फेथ यही मूल आधार हैं। थोड़ा समझने जैसा हैः जिनका सब मामलों में झगड़ा है, इस मामले में झगड़ा क्यों नहीं है? इस मामले में झगड़ा नहीं हो सकता। यह ट्रेड सीक्रेट है। यह बुनियादी धंधे का सूत्र है। दुकानें अलग-अलग हो सकती हैं, लेकिन दुकानों के चलने का नियम एक ही होता है। सब दुकानों के चलने का नियम एक होता है। दुकानदारों में आपस में झगड़ा हो सकता है, लेकिन धंधे के सूत्र एक होते हैं, धंधे के चलने की पटरी एक होती है। विश्वास सारे धर्म सिखा रहे हैं।
और इसलिए चार-पांच हजार वर्षों से धर्मों का प्रभाव है, लेकिन मनुष्य
के जीवन में कोई प्रतिभा का, मनुष्य के जीवन में कोई गरिमा का दर्शन नहीं होता। और जितने लोग धार्मिक हो जाते हैं उतने, उतने श्रीहीन, उतना उनका व्यक्तित्व खो जाता है। उतना वे गिरवी रख देते हैं किसी के पास अपना सब

कुछ। चारों तरफ गुरु बैठे हुए हैं दुकानें खोल कर, और जो भी उनके चरण पकड़ लेते हैं और अपनी आत्मा को उनके चरणों में रख देते हैं, उनको वे धार्मिक कहते हैं। अपने को बेच देना और गिरवी रख देने वाले लोग धार्मिक हो जाते हैं।
लेकिन ध्यान रहे, इसीलिए जवान आदमी मुश्किल से धार्मिक होता है, बूढ़े लोग धार्मिक हो पाते हैं। क्योंकि जवान आदमी को डराना जरा मुश्किल है। बूढ़ा आदमी डरने लगता है, मौत करीब देख कर घबड़ाने लगता है। हाथ-पैर थर्राने लगते हैं, लगता है कि पता नहीं मरने से क्या होगा, क्या नहीं होगा? और तब इसीलिए मंदिरों में, मस्जिदों में, चर्चों में, गुरुद्वारों में बूढ़े आदमियों की भीड़ दिखाई पड़ती है। वे जो बूढ़े आदमी दिखाई पड़ते हैं सारी दुनिया में, चर्चों में और मंदिरों में वे अकारण नहीं हैं, उसका कारण है। मरने के करीब पहुंच कर आदमी भयभीत हो जाता है, डरने लगता है। डरने की वजह से मंदिर पहुंच जाता है कि पता नहीं अब किसी गुरु का चरण पकड़ लेना जरूरी है, अब किसी पर विश्वास कर लेना जरूरी है। अब हमसे नहीं हो सकेगा, अब किसी के सहारे की जरूरत है। अब मौत करीब आती है, हाथ-पैर कंपने लगे हैं। लेकिन अगर धर्म असली होगा तो बुढ़ापे में छुएगा, यह हैरानी की बात है। अगर धर्म असली होगा तो जवानी में छुएगा, बचपन में छुएगा, लेकिन असली धर्म हो नहीं सका। विश्वास वाला धर्म असली हो नहीं सकता है।
विचार, लेकिन विचार की प्रक्रिया थोड़ी दुरूह है जरूर। विश्वास बहुत आसान है, क्योंकि हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता, सिर्फ विश्वास कर लेना पर्याप्त है। विचार में हमें कुछ करना पड़ता है। इसलिए जितना आलसी आदमी हो, जितना प्रमादी आदमी हो, जितना काहिल और सुस्त आदमी हो, उतना ही विश्वास की तरफ चला जाएगा। जितना हिम्मत का आदमी हो, सक्रिय आदमी हो, तेजस्वी हो उतना विचार की तरफ जाएगा। विचार में हमें कुछ करना पड़ेगा। मुझे कुछ करना पड़ेगा, सोचना पड़ेगा और सोचना खतरनाक है।
खतरनाक इसलिए है कि सोचना एक चिंता है, एक एंजायटी है। सोचने का मतलब
है कि जीवन के बड़े सवालों पर मुझे जवाब खोजने हैं। मैं क्यों हूं? मैं क्या हूं? मैं कहां से हूं? मैं कहां जा रहा हूं? जीवन के बड़े-बड़े अल्टीमेट चरम सवालों पर मुझे जवाब खोजने हैं। प्राण घबड़ाते हैं। मुझ जैसा छोटा आदमी क्या कर सकेगा? यह अपने बस के बाहर बात मालूम पड़ती है कि मैं जान सकूं कि जीवन का अर्थ क्या है? कि मैं जान सकूं कि जीवन क्यों है? अस्तित्व का राज मुझे पता चल सके तो डर लगता है, जिसको पता हो उसको मान लेना चाहिए। मैं कैसे पता लगा पाऊंगा?
लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूंः अगर कभी भी पता लगा पाएंगे तो आप ही पता लगा पाएंगे, और कोई आपको बता नहीं सकता है। यह जीवन का ज्ञान कोई ऐसी बात नहीं है कि कोई और किसी दूसरे को दे दे। यह ट्रांसफरेबल नहीं है। हस्तांतरणीय नहीं है कि मैं आपको दे दूं, आप किसी और को दे दें। जीवन का राज और रहस्य स्वयं ही जानना पड़ता है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, जीवन में जो भी सुंदर है, श्रेष्ठ है, सत्य है--वह स्वयं ही खोजना पड़ता है। स्वयं की ही खोज से वह मिलता है। क्योंकि वह स्वयं के भीतर ही मौजूद है। वह कहीं और नहीं है कि कोई और दे दे। वह मेरे भीतर है।
और मेरे भीतर जाने का रास्ता विश्वास नहीं है। मेरे भीतर, अपने भीतर जाने का रास्ता विचार है। जब मैं विचार करूंगा तो मुझे भीतर जाना पड़ेगा, जब मैं विश्वास करूंगा तो मुझे बाहर जाना पड़ेगा। अगर विश्वास करना हो तो महावीर के पीछे जाओ, अगर विश्वास करना हो तो बुद्ध के पीछे जाओ, अगर विश्वास करना हो तो राम को पकड़ो। और अगर विचार करना हो तो अपने सिवाय और कोई रास्ता नहीं है। विचार करना हो तो स्वयं के पास आओ, विश्वास करना हो तो किसी दूसरे के पास जाओ। विश्वास ले जाता है बाहर, विचार ले जाता है भीतर। विश्वास जोड़ देता है दूसरे से, विचार जोड़ता है स्वयं से। विश्वास है दूसरे के सहारे जीने की हिम्मत, और विचार है अपने पैरों पर खड़े होने का साहस। निश्चित ही विचार कर देता है अकेला, विश्वास जोड़ देता है भीड़ से। यह कभी आपने देखाः विचारकों की भीड़ नहीं दिखाई पड़ेगी आपको, विश्वासियों की भीड़ मिलेगी हमें। विचारकों की भीड़ देखी है कभी? विश्वासियों की भीड़ होती

है। हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, सिक्खों की भीड़, जैनियों की भीड़--यह सब विश्वासियों की भीड़ है। कभी महावीर-बुद्ध को भी साथ-साथ देखा है?
आप हैरान होंगे जान कर यह बात कि महावीर और बुद्ध दोनों एक ही समय में,
एक ही इलाके में पैदा हुए, समसामयिक थे। और ऐसा भी हुआ कि कभी एक ही गांव में भी ठहरे। और एक बार तो ऐसा हुआ कि एक ही धर्मशाला के एक हिस्से में महावीर ठहरे, और दूसरे हिस्से में बुद्ध ठहरे। एक ही गांव से गुजरे, एक ही गांव से गुजरे, एक ही रास्तों से गुजरे, चालीस साल तक बिहार के छोटे से इलाके में दोनों रहे, लेकिन दोनों का कोई मिलना नहीं हुआ। दोनों का कोई साथ भी नहीं हुआ, दोनों की कोई भीड़ भी नहीं बनी। शायद लोग समझेंगे, कैसे लोग थे? आपस में मिले क्यों नहीं?
कोई जरूरत न थी। विचार करने वाले को किसी के सहारे और साथ की कोई जरूरत नहीं है। विश्वासी को बड़ी जरूरत है; क्योंकि विश्वासी अपने को तो पाता है कमजोर, सोचता है दूसरे के साथ हो जाएं तो थोड़ी ताकत आ जाए।
तो विश्वासी भीड़ इकट्ठी करता है। फिर वह भीड़ की संख्या में ताकत मानता है। वह कहता हैः हिंदू, हिंदुओं की इतनी, इतनी करोड़ संख्या हैं; मुसलमान, मुसलमानों की इतनी करोड़ संख्या हैं; फलाने लोगों की इतनी करोड़ संख्या हैं--फिर विश्वासी संख्या बढ़ाने में लगते हैं। अपनी-अपनी संख्या बढ़ाओ, कनवर्ट करो, हिंदू को ईसाई बनाओ, ईसाई को आर्यसमाजी बनाओ, शक्लें बदलो, तिलक बदलो, आदमियों को इधर से उधर लाओ। क्यों इतनी सब परेशानी है? यह इतना सर्कस फैलाने की क्या जरूरत है किसी को, हिंदू को ईसाई बनाओ, ईसाई को हिंदू करो, चर्च वाले को मंदिर में लाओ, मस्जिद वाले को यहां ले जाओ, इस सबकी क्या जरूरत है? इसकी जरूरत है। डरे हुए लोग हैं। जितनी उनकी संख्या बढ़ जाती है, उतनी हिम्मत आती है कि चलो हमारे साथ इतने ज्यादा लोग हैं। विचारवान आदमी अकेला पर्याप्त होता है। उसे किसी के साथ की कोई जरूरत नहीं है। विचारवान आदमी अकेला ही होता है। सच तो यह है कि विचार जब वह करता है तो पाता है प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। अकेला ही है, अकेला ही हो सकता है। साथ भ्रम है, साथ झूठ है, साथ कल्पना है। एक-एक व्यक्ति एक गहरे अर्थ में अकेला है--अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला जीता है। जीवन के महत्वपूर्ण हिस्सों में सब हम अकेले हैं। कोई किसी के साथ भीतर नहीं जा सकता। हम इतने लोग यहां बैठे हैं, लेकिन सब अकेले बैठे हैं। हम इतने लोग यहां हैं, लेकिन कौन किसके साथ है?
जैसे-जैसे विचार बढ़ता है, वैसे-वैसे व्यक्ति को अपने अकेले होने का बोध स्पष्ट होता है। और जैसे-जैसे व्यक्ति को अकेलेपन का बोध होता है, व्यक्ति भीतर की तरफ जाता है, बाहर की तरफ नहीं। क्योंकि बाहर की तरफ जाने का एक ही कारण है कि हम दूसरे को साथी सोच लें, दूसरे को मित्र बना लें, दूसरे को संगी बना लें। दूसरे की तलाश में हम बाहर जाते हैं। पति जाता है पत्नी की तलाश में बाहर, पत्नी जाती है पति की तलाश में बाहर; गुरु जाता है शिष्यों की तलाश में बाहर, शिष्य जाते हैं गुरुओं की तलाश में बाहर। लेकिन जिसे सत्य की तलाश में जाना है और स्वयं की तलाश में जाना है, उसे अपने भीतर जाना होगा।
इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं, इस देश की प्रतिभा को जो सबसे बड़ी जंग
खा गई, वह जंग खा गई इसलिए कि हमने विचार करने की, विचार करने की जो महान क्षमता थी, उसको खोकर विश्वास करने के कचरे को पकड़ रखा है। और तब एक-एक आदमी के भीतर विचार का कुआं नहीं खुद पाता। हम कुआं खोद ही नहीं पाते अपने भीतर--कि जहां जल-स्रोत हैं चेतना के, वहां हम पहुंच जाएं। और ध्यान रहे, जो खोदेगा, वह पहुंचेगा। जो नहीं खोदेगा, वह बाहर खड़ा रह जाता है। अपने ही घर के बाहर खड़ा रह जाता है। और जब हम अपने ही बाहर खड़े रह जाते हैं। तो हम (अस्पष्ट... 48 : 53), हम बिल्कुल ही ऊपरी आदमी होते हैं। सच पूछा जाए तो हम सच्चे आदमी नहीं होते।
मैंने सुना है, एक दार्शनिक एक खेत के पास से निकलता था। और उस खेत में
एक झूठा आदमी खड़ा था। झूठा आदमी यानी लकड़ी के डंडे पर हंडी लगी थी, कुर्ता पहने हुए था। ऐसे तो हम भी अपने को खोजें तो हंडी और कुर्ते, और लकड़ी और

डंडे के सिवाय और बहुत कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन हम अपने को असली आदमी समझते हैं, उसको नकली आदमी समझ लेते हैं।
वह नकली आदमी खड़ा था खेत के पास, और एक दार्शनिक वहां से निकलता था। बहुत बार निकला था, उसे बड़ी हैरानी होती थी कि यह नकली आदमी अकेला खड़ा-खड़ा घबड़ा नहीं जाता? धूप भी आती है तब भी खड़ा रहता है; वर्षा आती है तब भी खड़ा रहता है; दिन भी, रात भी अकेले ही खड़ा रहता है। ऊब जाता होगा, घबड़ा जाता होगा। उस दार्शनिक को दया आई। उस दार्शनिक ने एक दिन जाकर उस नकली आदमी से पूछा कि मेरे मित्र, अगर नाराज न हों तो एक सवाल पूछूं? और वह सवाल यह है कि वर्षा में देखता हूं तो तुम खड़े हो, सर्दी में देखो तो तुम खड़े हो, धूप आए तो तुम खड़े हो, रात आए तो तुम खड़े हो, अंधेरी तो, उजेली तो, तुम कभी ऊबते नहीं, घबड़ाते नहीं यहां खड़े-खड़े?
वह नकली आदमी हंसने लगा। उसने कहाः बड़े पागल हो, तुम्हें पता नहीं। बिल्कुल ऊबता नहीं, बड़ा मजा आता है। उस दार्शनिक ने पूछाः मजा क्या है? उसने कहाः मजा एक, दूसरों को डराने का मजा है। पशु-पक्षियों को डराता रहता हूं चौबीस घंटे, फुरसत कहां अपने को जानने की कि अपन अकेले हैं। दूसरों में उलझा रहता हूं--कभी कौआ आ गया, कभी लोमड़ी आ गई, कभी कोई आ गया। उन्हीं को भगाता रहता हूं। उनको भगाने में इतना मजा आता है, इतना उनको डराने में मजा आता है कि तबीयत बड़ी प्रसन्न रहती है। और फुरसत किसे है अपने को जानने की? उस नकली आदमी को पता ही नहीं कि लकड़ी के डंडों पर कुर्ता पहना हूं। और हंडी खोपड़ी की जगह लगी हुई है। खोपड़ी जैसी चीज भीतर कुछ भी नहीं है। सिर्फ हंडी लगी हुई है। लेकिन दूसरों से फुरसत मिले तो वह अपनी तरफ जाए। और वह कह रहा है कि मुझे इतना मजा आता है दूसरों को डराने में कि कौन फिकर करे अपनी। फुरसत कहां है? सो भी नहीं पाता, रात-दिन धंधा जारी है। जब देखो तब भगाने के काम में लगा रहता हूं।
उस दार्शनिक ने सुना, उसने कहाः बात तो तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। दूसरों को डराने में मजा तो हमको भी बहुत आता है। आखिर एक मिनिस्टर को क्या मजा आता है? दूसरों को डराने का मजा। एक राष्ट्रपति को क्या मजा आता है? दूसरों को डराने का मजा। एक धनपति को क्या मजा आता है? पड़ोसियों को डराने का मजा। मजा क्या है? अगर मेरे पास बहुत बड़ा मकान है, तो मजा क्या है? मजा यह है कि जिनके पास छोटे मकान हों, उनको मैं डरा पाता हूं। अगर मैं दिल्ली के सिंहासन पर बैठ जाऊं, तो मजा क्या है? वह जिनको मैं नीचे छोड़ आया हूं सिंहासन के, उनको मैं डरा पाता हूं। सारी दुनिया में सारी दौड़ दूसरे को डराने की है। सारा मजा दूसरे को डराने का है।
उस दार्शनिक ने कहाः बात तो तुम ठीक ही कहते हो, मजा तो हमको भी बहुत आता है दूसरों को डराने में। वह नकली आदमी हंसने लगा। उसने कहाः जरूर आएगा, आएगा ही। सभी नकली आदमियों को दूसरों को डराने में मजा आता है। तुम सोचते हो कि मैं ही हंडी और डंडी पर लटकाया हुआ हूं, जरा जाकर अपने शरीर की जांच-पड़ताल करनाः तो हड्डियां डंडियां मिलेंगी और खोपड़ी हंडी मिलेगी, और कुर्ते पहने हुए हो। तो दार्शनिक तो बहुत डर गया।
क्योंकि बात तो यह सच है। जब तक हम अपने भीतर नहीं गए तो हम हंडियों और डंडियों और कुर्तों से ज्यादा क्या हैं? जब तक हम भीतर नहीं गए, जब तक हमने उसे नहीं जाना जो न हड्डी है, न मांस है, न मज्जा है। तब तक हम हड्डी और डंडी, और हंडी और कुर्तों से ज्यादा क्या हैं? लेकिन नहीं, फुरसत किसे है? सब दूसरे को डराने में लगे हैं।
हेड मास्टर मास्टरों को डरा रहा है। हेड क्लर्क छोटे क्लर्कों को डरा रहा है। स्कूल का गुरु, कोई नहीं मिल रहा है तो छोटे-छोटे बच्चों को डरा रहा है। पति पत्नी को डरा रहा है, पत्नी मौका मिल जाए पति को डरा रही है। सब डरा रहे हैं। और इतना मजा आ रहा है कि सर्दी आए, गर्मी आए, परेशानी हो, फुरसत किसको है? अपने को जानने की फुरसत किसको है? और इस दूसरे को हम डरा रहे हैं, दूसरे हमें डरा रहे हैं। और भीतर जाने का उपाय नहीं मालूम होता है। विचार करेंगे तो भीतर जा सकते हैं, विश्वास करेंगे तो बाहर ही भटकते रह जाएंगे। भीतर नहीं जा सकते।

इसलिए दूसरी बात आपसे कहता हूंः विचार। विचार का क्या अर्थ है? विचार
का अर्थ हैः जीवन की किसी भी समस्या के संबंध में बंधे हुए पिटे-पिटाए समाधानों को स्वीकार मत करना। जीवन की समस्या खड़ी हो--तो नग्न, निर्विचार, निरुत्तर, बिना किसी समाधान के उस समस्या के सामने खड़े होओ। पूरी तरह उस समस्या को अपने प्राणों के दर्पण में बनने देना। पूरी तरह उस समस्या को देखना, जानना, पहचानना; उत्तर की जल्दी मत करना कि कोई बंधा हुआ उत्तर मैं दे दूं।
एक छोटी सी समस्या हम ले लें, तो खयाल में आ जाए कि विचार करने में हम क्या करेंगे? अब सबसे बड़ी समस्या क्या है आदमी के सामने। वह यह है कि हम जान सकें कि हम कौन हैं? मैं कौन हूं? कभी आपने सोचा, बैठ कर विचार किया कि मैं कौन हूं? किया होगा शायद कभी तो पता चला होगा कि मैं फलां-फलां नाम का आदमी हूं, फलां-फलां का बेटा हूं। तो पता चला होगा कि मैं फलां-फलां गांव का तहसीलदार, फलां-फलां स्त्री का पति हूं। तो पता चला होगाः यह मेरा नाम है, यह मेरा गांव है। यही आप हैं? यही आपका होना है? किसी के बेटे, किसी के बाप, किसी के पति, किसी पद पर, किसी धन पर--यही बस होना है? इतने ही आप हैं? अभी मेरे एक डाक्टर एक मित्र हैं। वे ट्रेन से चलते थे कोई चार-छह बरस पहले, और दरवाजे पर खड़े थे। भीड़ थी और गिर गए चलती गाड़ी से। सिर को कुछ चोट लगी, जिंदा तो रहे, कोई नुकसान न पहुंचा, लेकिन स्मृति खो गई। भूल गए खुद का नाम, भूल गए बाप का नाम। बचपन के मेरे साथी थे। मैं उनको मिलने गया, देखने गया। मुझे आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे, पूछने लगे कि आप कौन, कहां से आए हैं? बचपन से साथ रहे। मैंने पूछाः मुझे नहीं पहचाना? तो उनके पिता ने कहाः आपको पहचानने का सवाल ही कहां है, वह अपने को ही नहीं पहचानता। वह खुद का ही नाम भूल गया है।
चोट खा गए हैं, स्मृति डगमगा गई है। हैं तो पूरी तरह अब भी, लेकिन वह जो रिकॉर्ड थी स्मृति की, वह जो टेप-रिकार्डिंग थी भीतर स्मृति की, वह डांवाडोल हो गई, वह पुंछ गई। हम भी अपने को यही समझ रहे हैं, यह याददाश्त कि मेरा नाम क्या है? यही हम हैं, अगर नाम हमारा छीन लिया जाए तो हम खत्म हो जाएंगे? अगर हम भूल जाएं कि हमारा घर कहां है तो हम खत्म हो जाएंगे? स्वामी राम लौटे अमरीका से और टिहरी-गढ़वाल के घर मेहमान हुए। वह राजा उनसे सुबह-सुबह मिला और पूछने लगा कि एक सवाल, एक छोटा सा सवाल मुझे पूछना है। बहुत लोगों से पूछा कोई जवाब नहीं देता। और आपसे मैं जवाब चाहता हूं, और फिजूल की बातें मुझे पसंद नहीं। राम ने कहाः मुझे खुद भी फिजूल की बातें पसंद नहीं। आप जल्दी से पूछिए, फिजूल की बातें क्यों कर रहे हैं? सवाल पूछिए। उस राजा ने कहाः सवाल मेरा यह है कि मैं ईश्वर से मिलना चाहता हूं, मुझे मिला दे सकते हैं। राम ने कहाः अभी मिलना है कि थोड़ी देर ठहर सकते हैं?
तो राजा बहुत हैरान हुआ, क्योंकि और भी से लोगों से पूछा था, कोई उपनिषद, कोई गीता और न मालूम क्या-क्या बकवास जारी करता था। यह आदमी कैसा है? न उपनिषद बोलता, न गीता बोलता है, बोलता है अभी मिलना है या थोड़ी देर रुक सकते हैं? यह तो मामला ही कुछ गड़बड़ है। उस राजा ने समझा कि शायद समझने में भूल हो गई। उसने कहाः महाशय, शायद आप भूल गए, मैं भगवान के लिए पूछ रहा हूं, ऊपर वाले के लिए। आप किसी आदमी की बात तो नहीं समझ गए। राम ने कहा कि अगर तुम आदमी की बात भी करते तो भी मैं भगवान की ही बात समझता। मुझसे भूल होनी मुश्किल है, मैं उसके सिवाय किसी की बात समझता ही नहीं हूं। अब तुम फिजूल समय क्यों जाया कर रहे हो? मैं तुमसे पूछता हूं कि अभी मिलना है कि थोड़ी देर रुकते हो? राजा ने कभी सोचा भी नहीं था कि सवाल ऐसा आएगा। अभी मिलना है?
अभी, अभी आपसे कोई पूछने लगे, अभी मिलते हैं? तो आप भी कहेंगे कि कल मैं आकर सोच कर जवाब दूंगा। कम से कम अपने बच्चों से पूछ आऊं, अपनी पत्नी से पूछूं, अपने घर के लोगों से, कि ईश्वर से मिल लूं। पता नहीं ईश्वर से मिलना कैसा खतरनाक हो, लौटना हो पाए या न हो पाए? तो ज्यादातर तो आप नहीं लौटेंगे। आप सोचेंगे कि मरने के बाद ही मिलेंगे, सभी लोग यही सोचे बैठे हैं। मरने के पहले शायद ही कोई ईश्वर से मिलने को राजी हो? वह तो मिलता

नहीं है इसलिए हम मंदिर-वगैरह चले जाते हैं। अगर वह मिलता होता तो हम मंदिर से बच कर निकलते।
डेंजरस, खतरनाक है ईश्वर से मुलाकात। क्योंकि ईश्वर से मुलाकात के बाद आप वही नहीं रह सकते हैं, जो आप हैं। यह कोई साधारण रिस्क, साधारण जोखम नहीं है। ईश्वर से मिल कर आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। यह वैसे ही है जैसे सोना निकल जाता है आग से, फिर वह वही नहीं रह सकता--जो था। सब नकली जल जाएगा, सब कचरा जल जाएगा। ईश्वर का साक्षात्कार, सत्य का साक्षात्कार आग से गुजरना है।
उस राजा ने कहाः अब आप नहीं मानते हैं तो ठीक है, अभी मिलवा दीजिए। लेकिन कुछ डरा हुआ है। स्वामी राम ने कहाः डरते हैं क्या? डरिए मत। एक छोटा सा काम कर दीजिए। एक कागज पर लिख दीजिए कि आप कौन हैं? तो मैं ईश्वर के पास पहुंचा दूं। नहीं तो वे मुझसे पूछेंगे, कौन मिलना चाहता है? तो मैं क्या कहूंगा?
राजा ने कहाः यह बिल्कुल ठीक है, मुझसे भी कोई मिलता है तो मैं लिखवा
कर ले लेता हूं कि कौन है। राजा ने लिखा अपना नाम, अपने महल का पता, राम को दिया। राम ने कहाः इससे नहीं चलेगा। यह सब झूठा पता-ठिकाना है। राजा कहने लगाः झूठा? आप क्या बात करते हैं। मेरे महल में ठहरे हैं, मुझे अच्छी तरह जानते हैं, मैं ही मालिक हूं, मैं ही राजा हूं, मेरा यह नाम है। राम ने कहा कि अगर तुम्हारा नाम बदल दिया जाए तो तुम बदल जाओगे? उस राजा ने कहाः नाम के बदलने से मैं क्यों बदलूंगा? नाम भर बदलेगा, मैं तो मैं ही रहूंगा। तो राम ने कहाः एक बात तय हो गई कि नाम ऊपर से चिपकाया गया है, बदला जा सकता है। तुम वही रहोगे। नाम के बदलने से कोई फर्क नहीं पड़ता। लेबलिंग है, एक डिब्बे के ऊपर लेबल लगा है और राम, किसी डिब्बे पर कृष्ण, किसी डिब्बे पर कुछ और है। नाम का लेबिल बदल दो, डिब्बे के भीतर का कंटेंट थोड़े ही बदल जाएगा। लेबल के बदलने में, भीतर तो जो है--वह है।
राम ने कहाः तुम तो तुम ही रहोगे, नाम बदल जाएगा तो फिर नाम तुम नहीं हो। और मैं तुमसे यह पूछता हूंः आज महल तुम्हारे पास है, कल सड़क के भिखारी हो जाओ तो तुम तुम ही रहोगे कि बदल जाओगे? उस राजा ने सोचा और कहा कि मैं तो मैं ही रहूंगा, अच्छे वक्त मेरे पास नहीं होंगे, महल नहीं होगा, भीख मागूंगा; राजा नहीं रहूंगा, लेकिन मैं तो मैं ही रहूंगा। मैं कैसे बदल जाऊंगा? तो राम ने कहाः फिर यह राजा होना भी नॉन-एसेंसियल हुआ, यह भी फिर गैर-महत्वपूर्ण हुआ। यह भी सारभूत न हुआ।
तुम क्या हो? जो राजा के बदलने पर भी नहीं बदलोगे? नाम के बदलने पर भी नहीं बदलोगे। अभी तुम्हारी उम्र कम है, कल बूढ़े हो जाओगे, तब बदल जाओगे? उस राजा ने कहाः मैं बूढ़ा होकर भी यही रहूंगा, जो जवान होकर हूं। तो राम ने कहाः फिर जवानी भी बेमानी है और बुढ़ापा भी बेमानी है। फिर तुम कौन हो? वह जो नहीं बदलेगा, वह जो सारी बदलाहट हो जाएगी, फिर भी वही रहेगा। जो है वह कौन है? तो उस राजा ने कहाः यह तो मुश्किल में डाल दिया, उसके बाबत तो मैंने कभी सोचा नहीं।
हमने भी नहीं सोचा है। किसी ने भी नहीं सोचा है।
तो राम ने कहाः तो फिर सोच कर आओ, क्योंकि मुझसे भगवान पूछेंगे कि कौन मिलना चाहता है? तुम मुझे झंझट में मत डालो। मैं क्या कहूंगा, कौन मिलना चाहता है? तुम्हें खुद ही पता नहीं है कि तुम कौन हो? उस राजा ने कहा, तब मैं सोच लूं तो फिर आऊं। वह राजा फिर नहीं गया वापस। क्योंकि सोचा नहीं होगा।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि अगर कोई सोच ले कि मैं कौन हूं? तो उसे फिर किसी भगवान के पास जाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि यह जानते हीमैं कौन हूं, आदमी भगवान के पास पहुंच जाता है--यह द्वार है। भीतर यह जो मैं हूं, इस द्वार के खुलते ही वह सब खुल जाता है--जो परमात्मा है। हम सब परमात्मा के मंदिर के द्वार हैं। बंद द्वार हैं इसलिए बाहर, खुल जाएं तो भीतर। लेकिन खुलेगा कैसे? विचार की हैमरिंग, विचार की हथौड़ी चाहिए। और विचार का मतलब क्या है कि आप बैठ कर सोचने लगें कि मेरा नाम यह है तो फिर व्यर्थ हो गई बात।

लेकिन एक और बात ध्यान में ले लें, अगर आपने बैठ कर यह भी सोचा कि मैं आत्मा हूं, मैं परमात्मा हूं, अहं-ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं; मैं सच्चिदानंद हूं, मैं शुद्ध-बुद्ध हूं। अगर यह भी सोचा तो भी मैं आपसे कहता हूंः आप सोच नहीं रहे हैं। यह फिर बकवास जो आपने सीख ली है, वही दोहरा रहे हैं। यह सोचना नहीं है। यह आपने सुन रखा है, किताब में पढ़ रखा है। लिखा हैः अहं-ब्रह्मास्मि। आप भी बैठ गए हैं आंख बंद करके और कह रहे हैं, मैं ब्रह्म हूं। यह आपको पता नहीं है और न आप सोच रहे हैं। यह भी सोचना नहीं है, यह भी दोहराना है। यह भी विश्वास है। आपको कहां पता है कि आप ब्रह्म हैं। और अगर पता ही हो जाए कि आप ब्रह्म हैं तो फिर दोहराने की क्या जरूरत रह जाएगी? नहीं, यह मत दोहराइए, सिर्फ पूछिए अपने से कि मैं कौन हूं? और अगर उत्तर मालूम नहीं है तो निरुत्तर पूछिए, पूछिए अपने से--मैं कौन हूं? मत दोहराइए कि मैं कौन हूं? मुझे पता नहीं, पूछता हूं सिर्फ--मैं कौन हूं? भीतर पूछिए कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? और कोई उत्तर मत दीजिए, सिर्फ प्रश्न को खड़ा करिए। और आप हैरान हो जाएंगे, यह प्रश्न तीर की तरह भीतर घुसने लगेगा। और एक दिन वहां पहुंच जाएगा, जहां से उत्तर आता है कि मैं कौन हूं? वह उत्तर फिर सोचा हुआ है, फिर वह उत्तर विचारा हुआ है। फिर वह स्वयं के प्राणों से निकसित, वह स्वयं से आया हुआ होगा।
और तब वह जो उपनिषद के ऋषि कहते हैं, वह जो महावीर कहते हैं, वह जो बुद्ध कहते हैं--जहां से उनके भीतर से आया था, वहीं से आपके भीतर से भी आ जाएगा। और वह उत्तर सोचा हुआ, विचारा हुआ होगा। और वह आपकी सारी प्रतिभा को जगा देगा। और वह आपके भीतर अंधेरे में जैसे कोई दीया जल जाए, कोई सूरज जल जाए, वैसा प्रकाश कर देगा। आपकी प्रतिभा में पहली दफा गरिमा और गौरव प्रकट होगा। आपकी प्रतिभा पहली तरह, पहली बार जीवंत और प्रकाशित बनेगी। और वैसी प्रतिभा ही जीवन के सत्य की दिशा में और जीवन की क्रांति की दिशा में दूसरा कदम है। चाहे व्यक्ति, चाहे समाज, चाहे पूरी मनुष्यता अगर हम कोई भी कं्राति चाहते हैं, तो हमें विश्वासों के अंधेरे से जाग कर छूट जाना होगा और विचार की किरणों का स्वागत करना होगा।
विचार का स्वागत दूसरा सूत्र है। विश्वास से मुक्ति और विचार का स्वागत।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रेम गंगा
दूसरा प्रवचन

विश्वास से मुक्ति-1

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल की चर्चा के संबंध में बहुत से प्रश्न मित्रों ने भेजे हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि आप अतीत को भूल जाने के लिए कहते हैं, लेकिन अतीत को भूल कर तो भविष्य में मार्ग भटक जाएंगे। अतीत तो हमारा प्रेरणा- स्रोत है, अतीत का अनुभव ही हमारा आधार है।

इस संबंध में दो-एक बातें हैं, समझ लेनी जरूरी है। पहली तो बात यह है
कि अतीत को भूल जाने का अर्थः अतीत की तरफ वे जो कि सम्मोहित होकर आंखें गड़ाए हुए हैं, वे जो कि हिप्नोटाइज्ड हैं, अतीत पर आंखों को टिकाए हुए हैं, उन्हें वक्त से हटा लेनी चाहिए। अतीत को भूल जाने का यह अर्थ नहीं है कि अतीत (... -अस्पष्ट) नहीं है। अतीत को भूल जाने का यह अर्थ भी नहीं है कि अतीत से जो अनुभव उपलब्ध हुए हैं, वे नष्ट हो जाएंगे। आप बचपन को भूल जाएं, इसका यह अर्थ नहीं है कि बचपन ने जो सिखाया है और बचपन के अनुभव से, जिससे आप गुजरे हैं, वह नष्ट हो जाएगा। वह तो सदा आपके साथ है। जिस अनुभव से आप गुजरे हैं, वह अनुभव कभी नष्ट नहीं होता। लेकिन उस तरफ, उस अनुभव की तरफ आंखों को लगाए रखने से नुकसान हो सकता है।
मनुष्य की जाति जिन अनुभवों से गुजरी है वह उनके मांस-मज्जा और खून के हिस्से हो गए हैं। हम जो हैं आज वह हमारे सारे अतीत का परिणाम है। वह हमारे खून में समाविष्ट हो गया है। उसे भुलाने का इस भांति कोई भी उपाय नहीं है कि उससे हम छूट जाएं। हम अपने अतीत ही हैं। हम हैं क्या? वह जो अनंतकाल से चला हुआ इकट्ठा हो गया है, वह सब हमारे भीतर मौजूद है।
लेकिन उस पर आंख गड़ाए रखना, उसके भविष्य में गति करने में बाधा बनता है। उस पर आंख लगाए रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह तो हमारे साथ है, वह हमारे भीतर है, हम वही हैं। और जितना हम आगे बढ़ते हैं उससे वह नष्ट नहीं होता, वही आगे बढ़ता है। वह जो अतीत है, वही वर्तमान को पार करके भविष्य में आगे बढ़ता है। लेकिन अगर हमारी आंखें उलझी रहें अतीत में... यह भी ध्यान रख लें कि उसी बात को याद रखना पड़ता है जो हमारे प्राणों में प्रविष्ट न हो गई हो, जो प्राणों में प्रविष्ट हो गई हो उसे याद रखने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।
वस्तुतः जो अतीत है, वस्तुतः जो हुआ है, वह तो हमारे खून में समाविष्ट
हो गया है। लेकिन जो नहीं हुआ है और हमने कल्पना करके बांध रखा है, झूठ अतीत के नाम पर थोप रखा है, उसी को याद रखने की जरूरत पड़ती है। वस्तुतः अतीत हमारा हिस्सा है। काल्पनिक अतीत, प्रोजेक्टेड--जो हमने सोच रखा है, मान रखा है वह हमारी कल्पना है। उसको अगर हम भूल जाएंगे तो वह जरूर मिट जाएगा, वह जरूर मिट जाना चाहिए। हमने अतीत के नाम पर बहुत सी कल्पित बातें खोज रखी हैं। वे न हुई हैं, न होने का कोई कारण है। अतीत महापुरुषों के नाम पर भी हमने न मालूम क्या-क्या कल्पनाएं सोच रखी हैं। उसमें काव्य ज्यादा है, हमारी श्रद्धा ज्यादा है, सत्य बहुत कम है।
अभी सुबह ही एक मित्र आए हैं और वे कहने लगेः अजीब-अजीब बातें हैं, महावीर के लिए कहा जाता है कि वे पहले बोल रहे थे, और उन्होंने कहा कि मैं तो वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर सकता हूं कि महावीर का खून सफेद था। मैं हैरान हुआ। और उन्होंने जो दलील दी वह यह कि मां, हम जानते हैं कि मां के शरीर से जो दूध बन कर निकलता है, उसके स्तन से दूध बन कर निकलता है। तो उन्होंने कहाः देखें आप, जब मां के शरीर से सफेद दूध निकलता है, ऐसे ही महावीर के शरीर में सफेद दूध बहता था।
तो मैंने उनसे कहा कि आप ऐसी बात कह रहे हैं इसके दो ही अर्थ हो सकते हैं। मां के स्तन में तो वह यंत्र है जो खून के सफेद हिस्से को अलग करता है, और लाल हिस्सों को अलग करता है। मां के शरीर भर में सफेद दूध नहीं दौड़ रहा है, यंत्र है जो खून को दो हिस्सों में तोड़ देता है, सफेद पार्टीकल को दूध

की तरह बाहर ले आता है। इसके दो ही अर्थ हैंः या तो महावीर के पैर में जहां सांप ने काटा और उससे दूध निकला, वहां स्तन हो पैर न हो। और अगर पूरे शरीर में ही सफेद दूध दौड़ता रहा हो तो उसका एक ही अर्थ है कि महावीर का पूरा शरीर मां के स्तन की तरह काम कर रहा हो।
बिल्कुल निहायत पागलपन की बातें हैं। कविता तक तो बात ठीक थी, काव्य
तक बात ठीक थी। कवि की यह कल्पना हो सकती है कि महावीर इतने प्रेमपूर्ण हैं कि जो उन्हें काटता है, जो उन्हें काटे, जो सांप उन्हें काटे और जहर उनके ऊपर फेंके, उसके प्रति भी उनके हृदय से मां की तरह प्रेम निकलता है। यह तो समझ में आने वाली बात हो सकती है। और इसको काव्य का प्रतीक भी लिया जा सकता है। लेकिन पैर से सफेद दूध निकलता हो? दो ही रास्ते हैंः या तो पूरा शरीर स्तन की तरह काम कर रहा हो, या शरीर में मवाद पड़ गई हो। खून न हो, पूरा शरीर सड़ गया हो। और महावीर जैसे स्वस्थ आदमी का शरीर सड़ा हुआ नहीं हो सकता।
लेकिन इस तरह की बातें हम सोचे हुए हैं। महावीर के लिए कहा जाता है कि
वे रास्ते से अगर निकलते हों और कांटा पड़ा हो तो कांटा उन्हें आता देख कर, अगर सीधा हो तो जल्दी से उलटा हो जाता है, जिससे महावीर के पैर में कांटा न लग जाए। यह काव्य तो बहुत सुंदर है। और काव्य तक रहे तो बड़ा प्रीतिकर है। जरूर ही महावीर जैसे प्यारे आदमी के पैर में कांटे को गड़ना नहीं चाहिए। लेकिन कांटा कोई फिकर नहीं करता, कांटा किसी की फिकर नहीं करता, और किसी को देख कर उलटा नहीं हो जाएगा।
मोहम्मद के लिए कहा जाता है कि मोहम्मद तो रेगिस्तान में थे। तो जहां
भी जाते उनके सिर पर एक बदली हमेशा छाया बनी हुई घूमती रहती, छतरी की तरह घूमती। काव्य तक बात ठीक है, हमारा प्रेम प्रकट होता है। यह भी ठीक है कि मोहम्मद जैसे आदमी के ऊपर बदली की छाया होनी चाहिए। लेकिन कोई बदली किसी के ऊपर छाया नहीं कर सकती। अभी हमने देखा कि गांधी को गोली लगी तो गोली फूल नहीं बन गई। वह हमारे सामने हुआ है। गांधी की हड्डियों को गोलियों ने उसी तरह छेद दिया, जैसे किसी बुरे से बुरे आदमी की हड्डियों को छेद देती हैं। गोलियों ने कोई फिकर नहीं की कि गांधी की हड्डियां हैं इनको मत छेदो, फूल बन जाओ।
लेकिन आने वाले भविष्य में ऐसा हो सकता है। कहानी ऐसी गढ़ी जा सकती हैं
कि गोलियां तो मारी गईं लेकिन गोलियां छू न सकीं। जीसस को सूली पर लटकाया गया तो जीसस मर गए। लेकिन पीछे कहानियां गढ़ी गईं कि वे मरे नहीं, वे पुनरुज्जीवित हो गए। फिर पुनरुज्जीवित होकर वे कब मरे इसकी कोई कथा नहीं है। फिर वे मरे भी कि नहीं मरे, इसका भी कोई पता नहीं है।
अतीत के नाम पर हमने बहुत कुछ थोपा है। और वह जो थोपा है, वह जरूर अगर
हम इस पर आस्तिकता छोड़ दें तो वह विलीन हो जाएगा। लेकिन वह विलीन हो जाना चाहिए। इससे मनुष्य के संबंध में और मनुष्य के स्वभाव के संबंध में सच्ची बातें स्पष्ट नहीं होतीं, झूठे फिक्शन और कहानियां खड़ी होती हैं। अभी-अभी मित्र ने एक सुबह मुझे कहा कि महावीर आहार तो करते हैं, भोजन
तो लेते हैं, लेकिन टट्टी-पेशाब नहीं जाते, विहार नहीं करते। अब यह, ये सारी की सारी बातें हम थोपे हुए हैं। व्यक्तियों के ऊपर भी, युगों के ऊपर भी हमने इस तरह की बातें थोपी हैं। हमने अतीत की एक कल्पना बना रखी है। और इस कल्पना पर हम सम्मोहक की तरह अटके हुए हैं।
जब मैं कहता हूं कि अतीत को भूल जाओ। तो मेरा मतलब हैः यह सारा सम्मोहन का जाल जो हमने पीछे फैला रखा है, उसे हटाओ और तथ्यों को देखो। ताकि आगे कहीं एक सुंदर जीवन निर्मित हो सके। लेकिन उस जीवन को निर्मित करने के लिए तथ्य, फैक्ट्स देखने पड़ेंगे। उस जीवन को निर्मित करने के लिए उपन्यासिक कल्पनाएं और कवियों की कल्पनाओं में नहीं भटक जाना पड़ेगा। लेकिन हम तो तथ्यों को देखने के आदी ही नहीं हैं। हम तो धीरे-धीरे इतने पुराण-कथाओं में खो गए हैं कि तथ्यों को देखने की आदत ही जैसे हमें भूल गई हो।
अभी मैंने एक किताब पढ़ी। डेग्नीज नाम का एक पश्चिमी यात्री भारत आया।
उसने स्वामी शिवानंद की एक किताब पढ़ी। जिस किताब में लिखा हुआ था कि ओम का

पाठ करने से सब तरह की बीमारियां दूर हो जाती हैं। ऐसी कोई बीमारी नहीं है जो ओम के पाठ करने से दूर न हो जाती हो। और न केवल यही, यह भी लिखा हुआ था कि अगर कोई ठीक से, परिपूर्ण रूप से ओम का पाठ करे तो मृत्यु पर भी विजय पा सकता है। उसके पास मृत्यु फटक नहीं सकती। वह किताब हिंदुस्तान में हजारों लोगों ने पढ़ी है, और वही किताब अकेली नहीं है। ऐसी हजारों किताबें हैं जिनमें इस तरह की बातें लिखी हैं। लेकिन हममें से तो कोई उसकी खोज-बीन करने नहीं गया। लेकिन वह डेग्नीज जो था, पढ़ कर उसे जब यह पता चला कि स्वामी शिवानंद संन्यासी होने के पहले डाक्टर भी रह चुके हैं। तब तो उसने सोचा कि यह आदमी कुछ तथ्य की बात कह रहा होगा।
वह डेग्नीज सीधा ऋषिकेश पहुंचा गया और जाकर उसने स्वामी शिवानंद के सेक्रेटरी से जाकर कहा कि मुझे अभी स्वामीजी से मिलना है। उन्होंने इतनी अदभुत बात लिखी है कि अगर यह सच है तो मनुष्य-जाति के जीवन में अमृत की वर्षा हो जाएगी! फिर दवाओं की कोई जरूरत नहीं, मेडिकल कालेजों की कोई जरूरत नहीं, किसी तरह की परेशानी की जरूरत नहीं, सारी बीमारियां दूर हो जाएंगी। इतना अदभुत सूत्र उन्होंने खोज लिया। मैं एकदम उनके दर्शन करना चाहता हूं। उस सेक्रेटरी ने कहा कि अभी आप नहीं मिल सकते, स्वामीजी बीमार हैं और डाक्टर उनकी नब्ज देख रहा है।
उस डेग्नीज ने कहाः क्या कहते हो? मैं विश्वास ही नहीं कर सकता कि स्वामीजी कभी बीमार पड़ सकते हैं! क्योंकि उन्होंने तो अपनी किताब में लिखा है कि ओम का पाठ करने से कोई बीमारी कभी पास भी नहीं फटकती।
अब तो स्वामीजी मर भी चुके हैं। लेकिन अगर हम, पहली तो बात हम गए ही नहीं होते। क्योंकि हममें से किसी की बुद्धि में यह बात पैदा नहीं होगी कि इस तरह की कहानियां गढ़ना अनैतिक है। इस तरह की कहानियां गढ़ना समाज को, देश को भटकाने और भरमाने के रास्ते हैं। किसी को खयाल ही पैदा नहीं होगा। और अगर हममें से कोई गया भी होता, और स्वामीजी बीमार मिल जाते तो हमारा भक्त हृदय कहता कि स्वामी जी लीला दिखा रहे हैं। वे कभी बीमार पड़ सकते हैं? वे भक्तों की परीक्षा ले रहे हैं। जो भक्त श्रद्धावान होगा वह जानता है कि स्वामीजी कभी बीमार नहीं पड़ सकते हैं। जो नास्तिक हैं, उनको दिखाई पड़ेगा कि बीमार पड़ रहे हैं। स्वामीजी कभी बीमार पड़ते हैं!
वह डेग्नीज तो बहुत परेशान हुआ। उसने सेक्रेटरी को कहा कि मैं यह मान
ही नहीं सकता। वह सेक्रेटरी बोला कि मानें या न मानें। तो उसने कहाः फिर उन्होंने लिखा क्यों है किताब में? तो उस सेक्रेटरी ने कहाः उन्होंने आत्मा के लिए लिखा होगा। आत्मा कभी न बीमार पड़ती है, और न कभी मरती है। यह शरीर तो क्षणभंगुर है, यह तो मरेगा।
लेकिन आत्मा बीमार ही नहीं पड़ती है, ओम का पाठ करो या न करो। ओम का न पाठ करो तो आत्मा बीमार पड़ जाएगी? और आत्मा अगर नहीं मरती तो ओम का जो पाठ नहीं करते उनकी मर जाएगी? तो आत्मा के संबंध में अगर यह लिखा गया है तब तो लिखना बिल्कुल फिजूल है। तुम चाहे पाठ करो और चाहे न करोः वह मरने वाली नहीं है, अगर नहीं मरने वाली है तो। और वह बीमार ही नहीं पड़ती है तो उसका पक्ष रखने का कोई सवाल ही नहीं है। लिखा तो यह शरीर के लिए ही गया है। लेकिन हमारी बुद्धि तथ्यों में सोचने वाली नहीं है। वे जो फैक्ट्स हैं, जीवन के जो तथ्य हैं, उनमें सोचने वाली नहीं है। हम सोचते हैं कल्पनाओं में। और कल्पनाओं में सोचने के कारण ही इस देश में विज्ञान का, साइंस का जन्म नहीं हो सका है।
और मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि जब तक इस देश में एक वैज्ञानिक बुद्धि का, एक साइंटिफिक माइंड का जन्म नहीं होता, तब तक इस देश के भाग्य में सूर्योदय भी नहीं हो सकता है। आज हम विज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं, बच्चे विज्ञान पढ़ रहे हैं। लेकिन फिर भी मैं आपसे कहना चाहता हूं कि विज्ञान की शिक्षा काफी नहीं है, वैज्ञानिक चित्त पैदा होना चाहिए। वैज्ञानिक चित्त न हो और अकेले विज्ञान की शिक्षा दी जाए तो टेक्नीशियन तो पैदा हो जाता है, साइंटिस्ट पैदा नहीं हो सकता। और वही हो रहा है। हमारे पास डाक्टर हैं, इंजीनियर हैं, एम.एससी हैं, बी.एससी. हैं, लेकिन उनमें वैज्ञानिक कोई भी नहीं है। वे केवल तोतों की तरह सीख कर खड़े हो गए हैं।

मैं अभी कलकत्ते में एक डाक्टर के घर में मेहमान था। वे डाक्टर तो एस
आर पीएस थे, पश्चिम में शिक्षा ली है। सांझ को मुझे अपनी गाड़ी में बैठा कर वे म्यूजियम में ले जाने को थे कि उनकी लड़की को छींक आ गई। वह एस आर पीएस डाक्टर मुझसे बोला, एक-दो मिनट रुक जाइए। मैंने उनसे कहाः पागल हो गए हो, तुम तो डाक्टर हो। तुम तो भलीभांति जानते हो कि छींक कैसे आती है? और तुम्हारी लड़की के छींक के आने से मेरे रुक जाने का कोई तीन काल में संबंध नहीं है। तुम डाक्टर होकर ऐसी बात करते हो तो मुझे हैरानी में डाल रहे हो! तुम पश्चिम से एस आर पीएस होकर आए हो, तुमने उच्च से उच्च शिक्षा पाई है, कलकत्ते में बड़े से बड़े फिजीशियन समझे जाते हो। और छींक के संबंध में तुम एकदम ग्रामीण, मूढ़ का व्यवहार कर रहे हो। तुम यह क्या कह रहे हो? उस डाक्टर ने कहाः मैं भलीभांति जानता हूं कि छींक क्यों आती है? वह तो सब ठीक है, लेकिन दो मिनट रुक जाने में हर्ज क्या है?
यह टेक्नीशियन बोल रहा है, साइंटिस्ट नहीं बोल रहा। मैंने उनसे कहाः हर्ज? तुम्हें हर्ज नहीं दिखाई पड़ता, हर्ज बहुत बड़ा है। अगर मैं दो मिनट तुम्हारे पास रुकता हूं तो इस मुल्क में वैज्ञानिक बुद्धि कभी पैदा नहीं होगी। हर्ज तो बहुत बड़ा है, हर्ज तो बहुत भारी है।

एक दूसरे नगर में एक इंजीनियर मित्र ने एक बड़ा मकान बनाया। बहुत सुंदर मकान बनाया, क्योंकि एक बड़े इंजीनियर हैं। खुद अपना मकान बनाया तो उस नगर में उनसे अच्छा मकान नहीं होगा। वे मुझे अपने मकान का उदघाटन करने के लिए ले गए थे। मैं जब उनके मकान का फीता काटने लगा तो देखा कि मकान के सामने दरवाजे पर एक काली हंडी लटकी हुई थी। और हंडी के ऊपर बाल लटके हुए हैं, और हंडी पर आदमी का चेहरा बना हुआ है। मैंने पूछा, यह क्या है? वे कहने लगे कि मकान को नजर न लग जाए। मकानों को नजरें लगती हैं इंजीनियरों के दिमागों में भी! तो एक टेक्नीशियन तो पैदा हो गया, लेकिन वैज्ञानिक पैदा नहीं हो पाया।
वैज्ञानिक बुद्धि पैदा नहीं होती जब तक हम तथ्यों में देखने की हिम्मत पैदा न करें। जब तक हम कल्पनाओं में खो रहे हैं तब तक विज्ञान पैदा नहीं होता। विज्ञान तो एक-एक तथ्य को कसता है, देखता है, प्रयोग करता है, ऑब्जर्व करता है, निरीक्षण करता है; तर्क की कसौटी पर, प्रयोग की कसौटी पर, प्रयोगशाला में। और जब सब तरह से वह तथ्य सारी परीक्षा की अग्नि से गुजर कर बाहर निकल आता है, तब स्वीकार करता है।
लेकिन हमने ऐसी बातें स्वीकार कर रखी हैं जो किन्हीं कसौटियों पर कभी नहीं कसी गईं, और किन्हीं अग्नि-परीक्षाओं से कभी नहीं निकलीं। और उन सब के लंबे बोझ को मन पर बैठाए, अगर हम बैठे रहे तो भविष्य में भी डर है कि हम विज्ञान पैदा कर सकेंगे, कि नहीं पैदा कर सकेंगे? और ध्यान रहे, अगर विज्ञान पैदा नहीं हुआ तो देश न तो समृद्ध हो सकता है, न देश स्वतंत्र हो सकता है। न देश शक्तिशाली हो सकता है, और न देश अंधविश्वासों के जाल और जंजाल से कभी मुक्त हो सकता है।
यह जान कर आपको हैरानी होगी, अगर इस देश की पूरी कथा को उठा कर देखा जाए तो यह आपको पता चलेगा कि इस देश के बार-बार हार जाने का कारण न तो आपस की फूट थी, क्योंकि जितनी आपस की फूट इस देश में है उतनी सारी दुनिया में सब जगह है। न कमजोरी थी, क्योंकि कमजोरी का कोई कारण नहीं है, यह देश इतनी बड़ी जनसंख्या का देश है। और दुश्मन कितनी ही ताकत लेकर आया हो, इतनी बड़ी जनसंख्या के सामने उसकी ताकत ज्यादा कभी भी नहीं होगी। लेकिन हार जाने का कारण? हार जाने का कारण यह था कि जो भी दुश्मन इस मुल्क पर आया, वह हमसे विज्ञान में ज्यादा विकसित था, हम उसके विज्ञान से हमेशा पीछे थे।
जब हिंदुस्तान में सिकंदर आया तो सिकंदर के सैनिक घोड़ों पर सवार थे।
और पोरस? पोरस के सैनिक हाथियों पर सवार थे। हाथी अवैज्ञानिक है युद्ध के मैदान में। हाथी बरात में, शादी-विवाह में बहुत अच्छा है। युद्ध के मैदान पर एकदम ही अवैज्ञानिक है। हाथी को लेकर युद्ध नहीं जीते जा सकते। घोड़ा ज्यादा तेज, कम जगह घेरने वाला, जल्दी से गति करने वाला, ज्यादा छलांग लगाने वाला। घोड़े पर लड़ने वाला सिकंदर और हाथी पर बैठे हुए पौरुस के

सैनिकों में जो टक्कर हुई, पौरुस किसी सिकंदर से कमजोर नहीं है। लेकिन जो टेक्नालॉजी का वह उपयोग कर रहा है वह अविकसित है, वह पिछड़ी हुई है।
जब बाबर हिंदुस्तान में आया तो बाबर के पास बहुत सैनिक नहीं थे। लेकिन बाबर के पास बारूद थी, विकसित बारूद थी। और हमारे सैनिकों के पास बारूद नहीं थी, फिर मात खा लेनी पड़ी। अंग्रेज भारत में आए तो अंग्रेजों के पास हमसे कोई ज्यादा ताकत नहीं थी। लेकिन अंग्रेजों के पास विकसित तोपें थीं, और हमारे पास पुराने ढंग की बंदूकें थीं। तो आज भी वही हालत है।
हम सारे जगत में आज भी विज्ञान की दृष्टि से सबसे पीछे खड़े हैं। विज्ञान विकसित नहीं होता, तो न तो देश समृद्ध होगा, न शक्तिशाली होगा। और विज्ञान को कौन विकसित नहीं होने दे रहा? विज्ञान को विकसित नहीं होने दे रहा है वह चित्त जो कल्पनाओं में सोचता है, तथ्यों में नहीं। हमें हमारे अतीत की सारी कल्पनाओं को मिटा देना है और पोंछ डालना है। और अतीत के जो तथ्य हैं उनको याद रखने की जरूरत नहीं, वे हमारे खून, हड्डी के हिस्से हो गए हैं। हम वही है, हमारा पूरा अतीत हम हैं। हम उसे अपने भीतर संजोए हुए हैं। उसे याद रखने की कोई भी जरूरत नहीं है।
आपको दिन भर याद रखना पड़ता है कि आप अपने बाप के बेटे हैं? सुबह-शाम में कितनी दफा आपको दोहराना पड़ता है कि मैं अपने बाप का ही बेटा हूं? और अगर आप दोहराते होंगे तो पास-पड़ोस के लोगों को शक हो जाएगा कि यह बेटा अपने बाप का नहीं हो सकता। जो अपने ही बाप का बेटा है, तो बात खत्म हो गई। उसे दोहराने की और याद रखने की और कसम खाने की जरूरत नहीं है। उसकी तख्तियां लटकाने की और बड़े-बड़े झालर बनाने की जरूरत नहीं कि मैं अपने ही बाप का बेटा हूं। और भूल कर अगर आपने बनाईं, तो लोगों को शक हो जाएगा। आप अपने बाप के बेटे हैं, आपका होना, आपके बाप, आपके भीतर प्रविष्ट हैं या आपके भीतर मौजूद हैं। उन्हें याद रखने की और दिन-रात शोरगुल मचाने की कोई जरूरत नहीं है। वे सहज ही आपमें मौजूद हो गए हैं। आपका सारा अतीत आपमें मौजूद है, आप आएंगे कहां से?
इसलिए जब मैं यह कहता हूं कि अतीत को भूल जाओ तो मेरा कोई यह मतलब नहीं
है कि उसे काट दो तलवार से, तुम अलग हो जाओ। अलग तो हो नहीं सकते, उससे तो सारा प्राण जुड़ा हुआ है। लेकिन उसी का दिन-रात रटन, उसी पर दिन-रात चित्त का लगा रहना खतरनाक है। और जो चित्त जिन चीजों पर लगा है, वह अतीत के सत्य नहीं हैं, अतीत की कल्पनाएं हैं। और अतीत पर हमने न मालूम कितनी कल्पनाओं का जाल थोप दिया है। अब उसी को बैठे हुए, बैठे सोच रहे हैं। अब उसी के सपने देख रहे हैं। फिर कौन भविष्य का निर्माण करे?
और जो लोग कहते हैं कि अतीत प्रेरणा का स्रोत है, वे गलत कहते हैं। अतीत सिर्फ बूढ़ों से बचने का उपाय हो सकता है, प्रेरणा का स्रोत नहीं। अतीत में जो भूलें हुई हैं, वे फिर न हो जाएं। अतीत में जहां हम भटकें हैं, हम फिर न भटक जाएं, इतना जानना काफी है। अतीत प्रेरणा का स्रोत नहीं है। प्रेरणा का स्रोत तो सदा भविष्य है, वे आदर्श हैं जो कभी पूरे नहीं हुए।

एक मित्र ने और पूछा हैः उन्होंने पूछा है कि अतीत में कुछ स्वर्णिम क्षण हुए हैं, उनको तो याद रखना चाहिए?

उन्हें याद रखने का इतना आग्रह हमारे मन में जो है वह यह बताता है कि
अब हम शायद वैसे स्वर्णिम क्षण पैदा करने में असमर्थ हो गए हैं। असल में अगर हम विकासमान हों तो हम रोज बीते कल से श्रेष्ठ दिन पैदा करेंगे। और बीता कल अपने आप भूलता चला जाएगा। बीते कल को याद तभी रखना पड़ता है जब हम आगे उससे श्रेष्ठ को पैदा करना बंद कर दें। अगर हम हर रोज नये को, श्रेष्ठ को जन्म दे रहे हों तो अतीत में जो श्रेष्ठ था उसको याद रखना अनावश्यक हो जाता है। उसको याद रखना पड़ता है, सिर्फ इसलिए कि हमारी सृजन की, हमारे क्रिएशन की क्षमता क्षीण हो गई है। अब हम कुछ नया पैदा नहीं कर सकते हैं, इसलिए अतीत को याद रखे बैठे हैं।
और फिर किन स्वर्णिम क्षणों की बात कर रहे हैं? कौन से स्वर्णिम क्षण
हो गए हैं? जो भी हो गया है उससे श्रेष्ठतर हो सकता है। जो भी हो गया है उस

पर रुक नहीं जाना है, उससे श्रेष्ठतर को जन्म देना है। उसे अगर याद भी रखना है तो सिर्फ इसलिए कि उससे श्रेष्ठतर को जन्म देकर उसे भुलाया जा सके। उसे याद इसलिए नहीं रखना है कि उसे हम मन का केंद्र बना लें, प्रतिभा का केंद्र बना लें। उस पर अटक जाएं और उससे श्रेष्ठतर का जन्म न हो। निश्चित ही मैं यह नहीं कह रहा हूं कि पांच हजार वर्षों में भारत में कुछ भी नहीं हुआ। बहुत कुछ हुआ। लेकिन जो हुआ वह उसके मुकाबले में कि जो हो सकता था ना-कुछ, और अगर उस पर हम रुकते हैं तो जो हो सकता है वह नहीं हो सकेगा।
आप ध्यान दें थोड़ा सा, अमरीका की कुल सभ्यता की उम्र तीन सौ वर्ष है। तीन सौ वर्ष जिस समाज की सभ्यता की उम्र है वह समाज आज दुनिया में पहली दफा सबसे ज्यादा समृद्ध समाज कैसे हो गया? और तीन सौ वर्ष के बच्चे के सामने हम दस हजार वर्ष पुरानी संस्कृति के लोग आज भिक्षा का पात्र लिए हुए खड़े हैं! शर्म भी मालूम नहीं पड़ती। कोई संकोच भी नहीं मालूम पड़ता। कोई सोचता भी नहीं है कि तीन सौ वर्ष जिनकी उम्र है सभ्यता की, उनके सामने दस हजार वर्ष पुरानी कौम भीख मांगे। यह मर जाने के लिए पर्याप्त कारण होना चाहिए। दस हजार वर्षों से तुम क्या कर रहे हो? दस हजार वर्षों में तुम गेहूं भी पैदा नहीं कर पाए अपने लायक? दस हजार वर्षों में तुम अकाल को रोक नहीं पाए? दस हजार वर्षों में तुम दवाएं नहीं बना पाए? दस हजार वर्षों में तुमने पृथ्वी पर क्या किया है? यह तीन सौ वर्ष (अस्पष्ट... 27 : 08) के सामने तुम्हें भीख मांगने के लिए खड़ा होना पड़ा। और हर चीज के लिए मोहताज हो जाना।
आजादी के बाद पिछले बीस वर्षों में अगर हमने किसी एक चीज में बहुत कुशलता पाई है तो वह जागतिक रूप से भीख मांगने में। हम इस वक्त युनिवर्सल बैगर हैं। जागतिक भिखारी हैं। सारी दुनिया में भीख मांग रहे हैं, और फिर भी नहीं सोचते कि यह भीख मांगने की स्थिति कैसे पैदा हो गई? यह आसमान से नहीं आ गई है।
मैं एक किताब पढ़ रहा था। काउंट कैसरलेन, एक जर्मन विचारक भारत आया था।
वह भारत से वापस लौटा। उसने एक किताब लिखी और उस किताब में भारत के संस्मरण लिखे। एक संस्मरण पर मैं एकदम ठहर गया और रुक गया। मुझे लगा कि कोई छापेखाने की भूल हो गई है। लेकिन फिर मुझे खयाल आया कि किताब भारत में नहीं छपी है, किताब जर्मनी में छपी है तो छापेखाने की भूल तो हो नहीं सकती। तो छापेखाने की भूलें तो इधर भारत में ही होती हैं। यहां तो हर किताब
के ऊपर, पहले दो पन्ने, तीन पन्ने होते हैंः भूल सुधार, शुद्धि-पत्र। और अगर गौर से उन तीन पत्र-पत्रों को पढ़ें, तो उसमें भी भूलें मिलेंगी। अब उनके लिए और अलग पत्र लगाना पड़े।
तो किताब तो जर्मनी में छपी है, इसलिए भूल नहीं हो सकती। फिर मैंने गौर से पढ़ा तो लगा कि मुझसे ही भूल हो रही है। उसमें एक वाक्य लिखा था जिसके कारण मुझे असुविधा मालूम हुई थी। उसमें एक वाक्य लिखा थाः इंडिया इ.ज ए रिच कंट्री, वेयर पुअर पीपल लिव। भातर एक अमीर देश है, जहां गरीब लोग रहते हैं। मैंने समझा कि जरूर कहीं कोई भूल हो गई है।
क्योंकि अगर देश अमीर है तो गरीब लोग कैसे रहेंगे? और अगर गरीब, गरीब लोग रहते हैं तो देश को अमीर कहने की क्या जरूरत है? लेकिन फिर समझ में आया कि वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि देश तो अमीर होने की पूरी संभावनाएं लिए हुए है, लेकिन रहने वाले मंदबुद्धि हैं। वे गरीब ही बने हुए हैं।
अमरीका में भी तीन सौ वर्ष पहले लोग रहते थे, हजारों वर्षों से लोग रहते थे। ये जो पश्चिम के, यूरोप के लोग अमरीका जाकर बसे, इनके पहले अमरीका में आदिवासी रहते थे हजारों सालों से। लेकिन वे हमेशा गरीब थे, देश यही था। जमीन यही थी, साधन यही थे। लेकिन जो रहने वाले थे, अवैज्ञानिक बुद्धि के लोग थे। वे हजारों साल से अमरीका में जहां आज सोना उगल रही है जमीन, वहीं वे भूखे मर रहे थे। ये दूसरे लोग पहुंचे। इन्होंने वहां इतना एफ्लुअंस, इतनी समृद्धि पैदा कर दी कि पृथ्वी पर इसके पहले कभी भी नहीं हुई थी।

भारत भी गरीब है। भारत के रहने वालों की भूल-चूक, गलतियों के कारण। भारत भी सोना उगल सकता है। भारत भी इतना संपन्न हो सकता है जिसकी कल्पना करनी मुश्किल है, लेकिन होगा नहीं। क्योंकि भारत की बुद्धि विपन्नता का रास्ता खोजती है। भारत की बुद्धि वैज्ञानिक नहीं, अवैज्ञानिक होने में रस लेती है। अगर भारत को वैज्ञानिक होने की बात समझाओ तो समझ में नहीं आएगी। इससे अच्छा उससे कहो, चरखा कातो, तकली चलाओ। उसके बिल्कुल समझ में आ जाएगी बात। वह एकदम चरखा-तकली कातने बैठ जाएगा--पूरा मुल्क।
लेकिन चरखा-तकली कातने से कोई मुल्क संपन्न नहीं हो सकता। ये गरीब रहने के ढंग हैं। गरीब बने रहने की तरकीबें हैं। इन तरकीबों से, इन अवैज्ञानिक व्यवस्थाओं से कभी देश की आत्मा जगमगा नहीं सकती। लेकिन हमारे सोचने का जो पैटर्न है, जो हमारे सोचने का ढांचा है, वह हमें इन बातों की तरफ बड़ी जल्दी ले जाता है। ठीक दिशा में ले जाने में हमें बाधा देता है।
इन दो-तीन सूत्रों को ध्यान में ले लेना चाहिए।
पहली बात, अतीत की कल्पनाओं में खोने से प्रेरणा नहीं मिलेगी, प्रेरणा मिलेगी मनुष्य के वर्तमान को देख कर। और मनुष्य का भविष्य कैसा सुंदर बनाया जा सकता है? इस वर्तमान से कितना सौंदर्य, कितनी संपन्नता, कितनी शक्ति निकल सकती है, उसको ध्यान में रख कर। अतीत के ढांचों को बार-बार दोहराने से नहीं देश विकसित होगा। कोल्हू के बैल की तरह घूमने लगेगा एक चक्कर में।
देश विकसित होगा नये-नये प्रयोग करने से, नई हिम्मत दिखाने से, जो कभी नहीं हुआ उसे करने की चेष्टा से। जो आदर्श कभी भी प्रयोग नहीं किए गए, उन आदर्शों पर प्रयोग करने से। हो सकता है भूल-चूक हो, लेकिन मेरा मानना है कि जो कौम भूल-चूक करना बंद कर देती है वह विकास करना भी बंद कर देती है। भूल-चूक करने की हिम्मत विकासशील मनुष्यता का लक्षण है। भूल-चूक करने
का मतलब यह है कि हम अभी प्रयोग करते हैं। भूल-चूक होगी, सुधार लेंगे। लेकिन भूल-चूक के डर से कुछ कौमें हैं, जैसे हम। हम प्रयोग ही नहीं करते। हम कहते हैंः जो होता रहा है वही होने दो, कम से कम वह परिचित है, पहचाना हुआ है। नये में कहीं भूल न हो जाए?
लेकिन भूल से अगर इतना ही डरेंगे तब तो नया कभी पैदा नहीं हो सकता है। नया पैदा होता है भूल करने की हिम्मत से। एक बात जरूर निश्चित है कि एक ही भूल बार-बार नहीं करनी चाहिए। लेकिन हर बार अगर नई भूल की जा सके, तो बड़ा सौभाग्य है। क्योंकि हर बार नई भूल करने वाली चेतना रोज नये रास्तों से परिचित होती है, नये मार्गों को खोजती और आगे बढ़ती है। लेकिन हम सुरक्षा- प्रेमी हो गए हैं।
सुरक्षा इसी में है कि जिस रास्ते पर हमारे पिता चले थे और उनके पिता चले थे, उसी पर हम चलते रहें। सुरक्षा इसी में है कि जो हमारे पुराने ऋषि- मुनियों ने दोहराया, वही हम दोहराते रहें। सुरक्षा इसी में है कि नया कुछ भी मत करो, क्योंकि नया करने से डर लगता है कि कहीं रास्ता न भटक जाए। नया करने से डर लगता है।
क्योंकि नये पर जाने का मतलब ही यह है कि वहां पर बने-बनाए रास्ते नहीं हैं। वहां रेडीमेड रास्ते नहीं हैं। नये का मतलब ही है कि वहां रास्ता भी बनाना पड़ेगा। पुराने के रास्ते बने हुए हैं। सब अतीत के मुर्दे उन रास्तों पर चल चुके हैं, उनके पैरों ने उन रास्तों को बिल्कुल सख्त, मजबूत बना दिया है। अब उन्हीं पर चलते रहो। लेकिन लीक पर चलने वाला समाज अपने हाथ से सब तरह के दुर्दिन, सब तरह की (अस्पष्ट 34 : 06) और सब तरह के दुर्भाग्य को निमंत्रण दे देता है। क्योंकि फिर जीवन एक बोझ हो जाता है। नये की खोज जहां बंद हुई वहां जीवन एक बोझ हो गया। वहां जीवन को खींचना है किसी तरह।
इसीलिए भारत के चेहरे पर कोई खुशी नहीं दिखाई पड़ती। भारत के प्राणों में कोई आनंद नहीं दिखाई पड़ता। भारत के जीवन में कोई उत्फुल्लता नहीं दिखाई पड़ती। बल्कि जिनके जीवन में दिखाई पड़ती है, हम कहते हैं, वे सारे के सारे लोग भौतिकवादी हैं। हम बड़े गंभीर अध्यात्मवादी लोग हैं। हमें

सिरियसनेस की एक भारी बीमारी पकड़े हुए है। हमें कोई इस देश का कोई साधु और संन्यासी हंसता हुआ नहीं मिलेगा। अगर मिल जाए हंसता हुआ तो हमें शक होगा कि यह साधु नहीं है। क्योंकि साधु को तो गुरु-गंभीर होना चाहिए। उसे तो ऐसा होना चाहिए जैसे जीते-जी मर गया हो। उसे तो ऐसा होना चाहिए कि उसके चेहरे पर कोई जीवन का लक्षण न दिखाई पड़े। तभी हम कहेंगे कि यह विराग को उपलब्ध हुआ है। इसके जीवन में अब सब समाप्त हो गया।
मरे हुए आदमी को हम विरागी आदमी कहते हैं। जीवन की उत्फुल्लता, जीवन
का आनंद और जीवन की किरणें और जीवन के फूलों का हमारे मन में कोई आदर, कोई सम्मान नहीं रह गया है। यह क्यों? इसका कारण है पीछे कुछ। यह जो इतनी सीरियसनेस की और इतनी गंभीर और इतनी उदासी की हवा छा गई है, उसका कारण यह है कि हमारे प्राण ने, इस मुल्क के प्राण ने एडवेंचर, दुस्साहस खो दिया है। और दुस्साहस एक ही है, एडवेंचर एक ही है, बंधी हुई लीकों पर न चलना। नये रास्ते खोजना, नये मार्ग ख्ल्लजना, नये प्रयोग करना। नये का जो आकर्षण है वही एडवेंचर है, वही अभियान है, वही दुस्साहस है।
लेकिन हम, हम नये से हमने सारा संबंध तोड़ लिया है। हम कहते हैं, पुराने घेरे में घूमते रहना ही ठीक है। परिभ्रमण पुराने घेरे में हम कर रहे हैं। जैसे हम मंदिरों के चक्कर लगा रहे हैं, परिभ्रमण कर रहे हैं, परिक्रमा कर रहे हैं--वह मंदिरों में ही नहीं कर रहे हैं हम। हम जीवन के मंदिर में भी परिभ्रमण कर रहे हैं, परिक्रमा कर रहे हैं। हमारी गति सीधी रेखा में नहीं है, गोल चक्करों में है।
गोल चक्करों की गति उदास कर देगी। बोर्डम पैदा कर देगी, ऊब पैदा कर देगी। क्योंकि वही चक्कर, वही चक्कर, वही चक्कर... । जीवन सब परिचित और परिचित में घूमता रहे तो घबड़ाने वाला हो ही जाने वाला है। ऊब पैदा हो जाएगी, ऊब पैदा हो गई है। यह ऊब हमारे सारे प्राणों पर छाई हुई दिखाई पड़ रही है।
किसी भी आदमी की आत्मा को थोड़ा सा खोलो और वहां से ऊब, बोर्डम के सिवाय कुछ भी नहीं निकलेगा। वहां से एकदम बेचैनी निकलेगी। और एक आह निकलेगी कि जिंदगी बोझ है, जिंदगी एक बर्डन है। जिंदगी को किसी तरह खींच लेना। लेकिन जिंदगी एक आनंद नहीं है। नये की खोज से जीवन बनता है आनंद। नये की खोज से चुनौती पैदा होती है, चैलेंज पैदा होता है। और प्राणों में सोई हुई शक्तियां जागती हैं।

इसलिए जिस देश को जवान रहना हो... एक मित्र ने पूछा है कि आपने कल कहा
कि समाज बूढ़ा हो गया है, इस समाज को जवान करने के लिए च्यवनप्राश क्या है? कौन सी दवा है जिससे यह समाज जवान हो सके?

तो मैं आपसे कहना चाहता हूंः नये का आकर्षण, नये की चुनौती, नये के निर्माण की कामना, दुस्साहस भूल करने का, नये रास्तों पर जाने का--इस समाज को जवानी दे सकता है। जवानी का मतलब ही नये का अकर्षण है, नये का मोह है। पुराने का, पुराने से बचने का, पुराने को हटाने का।
एक यात्री टाकविले उन्नीस सौ में अमरीका गया। और जाकर उसने अमरीका में देखा तो हैरान रह गया। वह युरोप से गया था। अमरीका को देख कर वह दंग रह गया। अमरीका तो एकदम नया हो रहा था। सब नया हो रहा था। मकान नये बन रहे थे, सड़कें नई हो रही थीं, कारखाने नये खुल रहे थे। उसने एक जहाज बनाने वाले कारखाने को गौर से निरीक्षण किया। उसने उस जहाज बनाने वाले कारखाने के मालिक को कहा कि तुम जो जहाज बना रहे हो, यह जहाज दस साल से ज्यादा नहीं चलेगा। हम युरोप में जो जहाज बनाते हैं, विशेष कर जर्मनी में, वह सौ साल चल सकता है। मजबूत बनाते हैं। तुम्हारे पास हमसे अच्छी मशीनें हैं, हमसे ज्यादा कुशल कारीगर हैं, हमसे ज्यादा अच्छा लोहा है, फिर तुम इतना कमजोर जहाज क्यों बना रहे हो कि दस साल चले? उस मालिक ने कहाः महाशय, शायद आपको पता नहीं। दस साल, दस साल भी कौन चलने देगा इसको? दस साल में हम और अच्छे जहाज बना लेंगे। सौ साल का तो सवाल ही नहीं है, दस साल में हम और अच्छे जहाज

बना लेंगे। इसको अलग फेंक देंगे। सौ साल चलाएगा कौन? दस साल तक हम रुकेंगे थोड़े ही? दस साल तक हम और नये जहाज बना लेंगे।
टाकविले ने लौट कर लिखा कि मैं एक नये मुल्क को पैदा होते देख कर आया हूं। एक जवान मुल्क को, जो यह सोचता है कि दस साल इतना लंबा वक्त है कि एक ही जहाज में दस साल चलने को राजी कौन होगा? हम दस साल में नये जहाज बना लेंगे। इसको उठा कर फेंक देंगे। आज अमरीका के बाजार में, जैसा हम अपने बाजार में पूछते हैं कि चीज कितने दिन टिकेगी, टिकाऊपन क्या है, स्टैबिलिटी क्या है? अमरीका में कोई नहीं पूछता कुछ। यह चीज टिकेगी कितनी देर? स्टैबिलिटी के लिए कोई पूछता ही नहीं। एक नया शब्द अमरीका के बाजार में सुनाई पड़ता है, और वह है एक्सचेंजबिलिटी। यह चीज बदली कितनी देर में जा सकती है।
एक आदमी फाउंटेन पेन खरीद रहा है, तो वह यह पूछता है कि अगर मैं दो महीने बाद इसको बदल कर नया फाउंटेन पेन लेना चाहूं तो कितने पैसे में अदल-बदल हो जाएगी? एक्सचेंजबिलिटी क्या है इसकी? कोई ड्यूरेबिलिटी नहीं पूछता, क्योंकि दो महीने में नया फाउंटेन पेन बन जाने वाला है, पुराने को रखेगा कौन? हर छह महीने में कार का नया मॉडल आ जाएगा, पुरानी कार को रखेगा कौन? जीवन रोज नये की तलाश में, रोज नये के निर्माण में इतना आतुर होकर संलग्न है, इसलिए जीवन में एक उत्फुल्लता है, जीवन में एक आनंद है, जीवन में एक रस है।
परमात्मा भी अगर कहीं है तो रोज नये का निर्माण करता है, पुराने को रोज मिटाता जाता है। इसलिए अब तक परमात्मा ऊब नहीं गया। नहीं तो कब, कब का उसने आत्महत्या कर ली होती। अभी तब घबड़ा गया होता। अगर रामचंद्रजी, रामचंद्रजी कोई हर साल पैदा करता तो अभी तक बहुत घबड़ाहट हो गई होती, और रामलीला ही होती रहती इस जमीन पर, और सीता चोरी जाती रहती और वापस छीनी जाती रहती। तो भगवान ने आत्महत्या कर ली होती। भगवान राम को एक बार पैदा करता है फिर दोबारा नाम ही नहीं लेता उनका। एक बार महावीर को पैदा करता है फिर दुबारा उस तरह का आदमी ही पैदा नहीं करता। भगवान एक बार जिसे पैदा करता है, दुबारा रिपीट नहीं करता। पुनरुक्ति नहीं करता। एक-एक आदमी नया और अनूठा है। सब नया और अनूठा है। भगवान दुनिया में सबसे बड़ा एडवेंचर है। और इसलिए भगवान दुनिया में सबसे ज्यादा जवान है, भगवान कभी बूढ़ा नहीं होता। भगवान के बूढ़े होने की कल्पना ही नहीं हो सकती। क्योंकि भगवान रोज नये के लिए आतुर है, पुराने को दोहराता ही नहीं। जो एक बार हो गया--हो गया, वह फेंक दिया गया कबाड़खाने में। नये सृजन के जगत में रोज नया होता जा रहा है।
कभी आपने यह सोचा, भगवान बहुत बेरहम है पुराने को मिटाने में। बूढ़ों
को विदा कर देता है, छोटे बच्चों को जन्म देता है। अगर हमसे पूछे कोई, भारतीयों से, तो हम कहेंगेः यह क्या पागलपन है? जब बार-बार आदमी पैदा करना है तो बूढ़ों को जिंदा रखो। बच्चों को पैदा करने की क्या जरूरत है? बने- बनाए को मिटाते हो, गैर-बने को बनाते हो। बना-बनाया अच्छा था, भला था, पहचाना हुआ था--चोरी नहीं करता था, बीड़ी नहीं पीता था, चाय नहीं पीता था। यह बच्चा खतरनाक है। पता नहीं क्या करे? यह भटक सकता है। वह जो हमारा बूढ़ा था, वह तो निश्चित था। वह तो पहचाना, जाने-माने रास्ते पर चलता था। सत्तर साल तक हमने जांच-परख कर ली थी। उसको बचाओ, उसको तो बचाते नहीं, उसको तो विदा करते हो और इस छोटे बच्चे को पैदा करते हो--जो हिप्पी हो जाए, बीटल हो जाए, बिकनिक हो जाए, क्या हो जाए, कुछ पता नहीं। खतरा क्यों मोल लेते हो? परिचित, जाने-माने लोगों को बचाओ। अनजानी आत्माओं को क्यों भेजते हो जगत में? लेकिन भगवान नहीं सुनता, वह बूढ़ों को कहता है कि विदा हो जाओ, रास्ता खाली करो, नया आ रहा है। वह पुराने परिचित पत्तों को गिरा देता है, नये कमजोर कोंपलों को उगाता है। प्रतिपल यह कार्य चल रहा है सृजन का। इसीलिए नया है, इसीलिए ऊब वहां पैदा नहीं हो गई होगी और... ।
लेकिन हमने भारत में उलटी प्रक्रिया पकड़ी। हम भगवान से उलटे चल रहे हैं, हालांकि हम भगवान की बातें बहुत करते हैं। लेकिन हम भगवान के उलटे चलते हैं। हम पुराने के आग्रही हैं और भगवान नये का। हम पीछे की तरफ देखते हैं, भगवान आगे की तरफ। हम बूढ़े को पकड़ते हैं, भगवान बच्चे को। हम कहते हैं

सूखे पत्तों को सम्हाल कर रखो और भगवान सूखे पत्तों को हवाओं में उड़ा देता है और नई कोपलों को जन्म दे देता है।
जीवन की सृजन की जो प्रक्रिया है वह नये का अवतरण है। और हम, हम पुराने
की पुनरुक्ति पर ठहरे हुए हैं। वह जो मैं कल आपको कहा हूं, वह इसलिए नहीं कि अतीत से मेरा कोई विरोध है, इसलिए भी नहीं कि मैं कोई अतीत का दुश्मन हूं। इसलिए भी नहीं कि मैं चाहता हूं कि अतीत के सारे दरवाजे बंद कर दिए जाएं, सारी जड़ें काट दी जाएं--नहीं। वह इसलिए कि मैं भविष्य का प्रेमी हूं। और मैं मानता हूं कि अतीत ही वर्तमान से गुजर कर भविष्य हो रहा है, प्रतिपल। सारा अतीत हममें समाहित, और हम प्रतिपल भविष्य में जा रहे हैं और अगर हम भविष्य में जाना बंद करते हैं तो, तो हम अतीत की जो यात्रा चल रही है, उसमें बाधा डालते हैं। वह जो गंगा गंगोत्री से निकलती है, वही गंगा तो जाकर गिरती है, सागर में।
वह जो अतीत पीछे छूट गया है गंगोत्री में, वह जो गंगा निकली है गंगोत्री से, वही तो भागती हुई जाती है सागर तक। लेकिन गंगा कहे कि मैं तो गंगोत्री की तरफ ही आंखें टिकाए रुकी रहूंगी, मैं गंगोत्री को कैसे भूलूं? तो फिर सागर नहीं आएगा। गंगा गंगोत्री पर ही ठहर जाएगी। और ठहरी हुई गंगा, गंदगी की गंगा हो जाएगी। जो बहती गंगा हैः वह जीवंत, स्वच्छता की गंगा है। जहां भी ठहराव है, वहां गंदगी है। जहां भी ठहराव है, वहां सड़ांध है। जहां भी ठहराव है, वहां जीवन मर जाता है और लाशें इकट्ठी होती हैं। ठहराव के विरोध में कह रहा हूं, और गति के पक्ष में कह रहा हूं। अतीत के विरोध में इसलिए कह रहा हूं कि अतीत की पकड़ हमसे छूट जाए, अतीत का मैं विरोधी नहीं हूं। हमारी जो पकड़ है अतीत पर, हमारी जो क्लींगिंग है वह छूट जाए। और मन मुक्त हो जाए, भविष्य की तरफ देखने में और नये को स्वीकार करने में और अंगीकार करने में।
यह जो नये की यात्रा शुरू हो सके तो भारत के पास इतनी क्षमता है, इतनी शक्ति है, इसकी गंगा अगर एक बार बह जाए तो शायद जगत में कोई देश हमारे साथ खड़े होने में असमर्थ हो जाएगा। कभी-कभी ऐसा होता है, अभिशाप भी सौभाग्य बन जाते हैं। कभी ऐसा होता है कि एक किसान अपने खेत में बीज नहीं डालता, पड़ोस के किसान अपने खेत में बीज डालते रहते हैं। उनकी फसलें हर साल आती हैं, और एक किसान दस-बीस साल तक अपनी जमीन को बंजर छोड़ देता है। फिर अचानक बीस साल बाद वह बीज डालता है तो फिर पड़ोस के खेत उस बंजर खेत का मुकाबला नहीं कर सकते हैं। क्योंकि बीस साल में बहुत ऊर्जा बहुत शक्ति संगृहीत हो जाती है। फिर बीस साल बाद जो फसल आएगी, वह बात ही और होगी। उस फसल का मुकाबला दूसरे खेत नहीं कर सकते।
भारत का मस्तिष्क, भारत की जीनियस, भारत की जो प्रतिभा है, वह कोई हजारों साल से बंजर पड़ी हुई है। हमने उससे कुछ भी क्रिएटिव नहीं किया है। यह दुर्भाग्य है। लेकिन यह सौभाग्य बन सकता है, अगर हम आज भविष्य के बीज बोना शुरु करें तो कोई नहीं कह सकता कि इतने दिनों तक जो प्रतिभा अवरुद्ध पड़ी हो, वह अगर मुक्त हो जाए तो शायद पृथ्वी पर उसके समक्ष खड़े होने में किसी की सामर्थ भी न हो। शायद दूसरे खेत, जो पैदावार करते रहे हैं फीके पड़ जाएं। यह हो सकता है, लेकिन यह आसमान से नहीं हो जाएगा। यह अपने आप नहीं हो जाएगा। इसमें हमें सहभागी होना पड़ेगा।

एक मित्र ने पूछा है कि जो हो रहा है वह तो अपने आप हो रहा है, हमें कुछ करने की क्या जरूरत है?

भाग्यवादी सदा इसी भाषा में सोचते हैं। वे सोचते हैं जो हो रहा है, वह
हो रहा है। हमें करने की क्या जरूरत है? जरूर हम कुछ नहीं करेंगे तो भी कुछ होता रहेगा। होना नहीं रुक जाएगा। लेकिन वह होना कभी भी वह नहीं होगा, जो होना चाहिए। वह होना सिर्फ इतिहास का अनिश्चित, अनिर्णीत, अनिर्देशित प्रवाह होगा, और करोड़ों घटना मिल कर जो कर देंगी वह होता रहेगा। लेकिन वह कभी स्वर्ग बनाने वाला नहीं होगा। उससे नरक ही निर्मित हो सकता है।

वह ऐसा ही होगा, जैसे इंदौर के रास्तों पर हम आज कह दें कि चौबीस घंटे
के लिए सब स्वतंत्रता है, अब कोई निर्देशन नहीं। अब कोई चौरस्ते पर पुलिसवाला नहीं होगा। अब बाएं-दाएं चलने के कोई नियम नहीं होंगे। अब जिसको जहां जाना हो और जिस तरह जाना हो, वह चौबीस घंटे जा सकता है। तो भी लोग जाएंगे। तो भी कुछ लोग पहुंच जाएंगे। लेकिन जो पागलपन पैदा हो जाएगा रास्तों पर, और जो दुर्घटनाएं हो जाएंगी। पहुंचेंगे कम लोग जहां निकले थे पहुंचने को, वहां तो निश्चित नहीं पहुंच पाएंगे, कहीं और पहुंच जाएंगे। कुछ तो स्वर्ग पहुंच जाएंगे और स्वर्ग तो हम केवल औपचारिक रूप से कहते हैं, अधिक पहुंचते तो नरक ही होंगे। वह सारी दौड़-धूप हो जाएगी। ठीक अभी अनिर्णीत जो हम चल रहे हैं, जो घटनाएं घट रही हैं, लेकिन वे घटनाएं हमारे हाथ से नहीं घट रही हैं। हम उनके सुरक्षा नहीं बन पाते हैं। एक वक्त आ गया है टेक्नालॉजी के विकास में, विज्ञान के विकास में आदमी को स्रष्टा होने की क्षमता दे दी, अब आदमी को अंधे प्रवाह में बहने की कोई जरूरत नहीं है। अब हम निर्णीत कर सकते हैं, हम निश्चय कर सकते हैं। जैसे उदाहरण के लिएः हम बच्चे पैदा कर रहे हैं, और बच्चे तो पैदा होते ही रहे हैं सदा से। और कभी यह नहीं सोचा गया कि बच्चों को रोकना या पैदा करना आदमी के हाथ में है।
भारत में अब भी ऐसा ही सोचा जा रहा है कि बच्चे तो भगवान के हाथ में हैं। वह जिनको पैदा कर रहा है, कर रहा है, हम क्या कर सकते हैं? जो आएंगे, वे आएंगे और बच्चे आते जा रहे हैं। और हम खड़े हुए देख रहे हैं और बैंडबाजा भी बजा रहे हैं, और बताशे भी बांट रहे हैं। और बच्चे बढ़ते जा रहे हैं, और अपनी ही मौत का इंतजाम कर रहे हैं। पूरा मुल्क मरने की तैयारी कर रहा है। और अगर कहो--हम कहेंगे, यह तो भाग्य की बात है। हमारे हाथ में क्या है?
यह भाग्य की बात अब नहीं है। यह भाग्य की बात कल तक थी, क्योंकि आदमी
के पास ज्ञान कम था। आदमी के पास जितना ज्ञान कम होगा, भाग्य उतना ज्यादा होगा। आदमी के पास ज्ञान जितना बढ़ेगा, भाग्य उतना कम होता चला जाएगा। आदमी के पास जिस दिन अधिकतम ज्ञान होगा, उस दिन न्यूनतम भाग्य रह जाएगा। भाग्य का मतलब हैः अज्ञान। जो हम नहीं जानते, उस पर हमारा वश नहीं है; लेकिन जो हम जान लेते हैं, उस पर हमारा वश हो जाता है। आज हम रोक सकते हैं, आज हम तय कर सकते हैं कितने बच्चे इस मुल्क में पैदा हों। आज हम तय कर सकते हैं कि कैसे बच्चे पैदा हों? आज हम तय कर सकते हैं कि कितनी उम्र हो? आज हम तय कर सकते हैं कि जो लोग रहें वे सुख से रहें कि दुख से रहें। आज हमें अंधे भाग्य पर खड़े होने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन हमारी जो प्रवृत्ति है सोचने की वह यही है कि जो हो रहा है, वह हो रहा है। हम क्या कर सकते हैं? ऐसे हम तमाशबीन की तरह धक्के खाते हुए इतिहास के रास्ते पर चलेंगे, तो चलना तो हो जाएगा, चलना होता रहा है। लेकिन वह चलना सुखद नहीं हो सकता, सौभाग्यपूर्ण नहीं हो सकता।
मैंने सुना है कि एक बार एक देश में ज्योतिषियों ने खबर की कि सात वर्ष तक अकाल पड़ेगा। क्योंकि सात वर्ष तक वर्षा नहीं होने वाली है। एक किसान अपने खेत में काम कर रहा था। उसने राह से चलते हुए लोगों से सुना कि ज्योतिषियों ने कहा है कि अब सात वर्ष तक वर्षा नहीं होगी। तो उस किसान ने सोचा कि जब सात वर्ष तक वर्षा ही नहीं होगी तो मैं फिजूल मेहनत क्यों करूं। उसने अपने सब साज-सामान को साफ-सुथरा करके पोटलियों में बांध कर झोपड़े के भीतर रख दिया। सात दिन तक अपनी खाट पर अंदर बैठा रहा। लेकिन सात दिन में सारी हड्डी-पसली दुखने लगीं, सदा काम करने वाला आदमी, और सात दिन में इतना घबड़ा गया, ऊब गया। तो उसने कहा, सात साल कैसे बीतेंगे? तो बहुत मुश्किल हो गई। सातवें दिन उसे खयाल आया कि सात साल मैं बच भी सकूंगा, यह भी संदिग्ध हो गया। क्योंकि ऐसे सात साल बैठे-बैठे मर जाऊंगा।
जो बैठा रहता है, मर ही जाता है। जीवन तो चलने का नाम है।
फिर उसने सोचा और अगर किसी तरह बच भी गया तो सात साल में खेती बाड़ी करना भूल जाऊंगा। यह हाथ-पैर जवाब दे देंगे, ये मसलें खत्म हो जाएंगी, यह ताकत खो जाएगी। फिर कौन खेती-बाड़ी करेगा? उसने कहाः यह तो बड़ा मुश्किल मालूम होता है। उचित तो यही है कि मैं अपनी खेती-बाड़ी का काम शुरू कर दूं।

जब वर्षा होती है, तो होगी। कम से कम काम तो जारी रहेगा। कम से कम अपनी काम करने की ताकत तो जिंदा रहेगी। उसने अपना सामान फिर निकाल लिया। वह जाकर अपने खेत में फिर खोज-बीन में लग गया।
एक छोटी सी बदली उसके ऊपर से निकलती थी। उस बदली ने नीचे देखा, सारे किसान तो जा चुके हैं अपने घरों को, एक पागल किसान खेत में काम कर रहा है। सोचा उस बदली ने कि मालूम होता है ज्योतिषियों की खबर इसे नहीं मिली है। तो उस बदली ने नीचे झुक कर कहा कि अरे पागल! अरे नासमझ! तुझे पता नहीं कि ज्योतिषियों ने कहा है कि सात साल तक वर्षा नहीं होगी? उस किसान ने कहाः सब पता है। सात दिन तक उनकी बात मान कर मैं मुश्किल में भी पड़ गया। मर जाऊंगा सात साल में। और नहीं भी मरा तो खेती-बाड़ी करना भूल जाऊंगा। देवी तू अपने रास्ते पर जा, जब होगी वर्षा--होगी, हम अपना काम तो जारी रखें। बदली ने सोचा कि यह किसान कहता तो ठीक है, सात साल में मैं भी कहीं अगर पानी बरसाना भूल गई तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। अभ्यास छूट गया और सात साल तक पानी नहीं गिराया तो फिर पानी गिरेगा भी कि नहीं गिरेगा? उस बदली ने तो कहाः छोड़ो ज्योतिषियों को, अपना काम जारी रखो। तो उस बदली ने वर्षा कर दी उस खेत पर।
यह तो कहानी है। लेकिन मुझे लगता है कि भारत ज्योतिषियों की मान कर बहुत दिन से बैठा हुआ है, भाग्यवादियों की मान कर बहुत दिन से बैठा हुआ है। वह जो होगा बाद में होगा। उससे भाग्य में जो होगा और नहीं होगा, वह सच है या झूठ यह तो दूसरी बात है। लेकिन बैठे-बैठे करने की क्षमता हमने खो दी है। बैठे-बैठे हमारे प्राणों में जो ताकत, जो ऊर्जा, जो अभ्यास से पैदा होती है, वह सब विलीन हो गई। हम बैठे-बैठे मुर्दा हो गए हैं, बैठे-बैठे (54 : 54 अस्पष्ट... ) हो गए हैं। बैठे-बैठे हालत यह हो गई कि जैसे किसी ने लाश को इंतजाम करके, पलस्तर लगा कर, मसाला लगा कर रख दिया हो। बस श्वास लेते हैं। और सब खो गया है। भाग्य को मानने का परिणाम यह होने ही वाला है।
भाग्य को नहीं, स्वयं को मानना जरूरी है। और स्वयं से ही भाग्य निर्मित होता है। और जहां निर्मित नहीं होता है, उसका अर्थ है कि वहां हमारा अज्ञान है। तो ज्ञान की चेष्टा जारी रहनी चाहिए थी, वहां भी ज्ञान पैदा हो सके। तो यह मैं नहीं कहूंगा आपसे कि जो होने वाला है वह अपने आप हो जाएगा। अपने आप नहीं, जो अब तक हुआ है वह भी आपके द्वारा हुआ है। चाहे आप जानते हों, चाहे आप न जानते हों। और जो होगा, वह भी आपके द्वारा होगा। चाहे आप जानें, और चाहे आप न जानें। लेकिन अगर न जाने हुए किया तो वह अनिर्णीत होगा, अनुचित होगा, भटका हुआ होगा, अराजक होगा। और अगर जानते हुए किया तो वह सुव्यवस्थित होगा, वह निर्देशपूर्वक होगा। वह वही होगा जो हम चाहते हैं, जो होना चाहिए। वह वही होगा जो हजारों-हजारों साल से मनुष्य की आत्मा में कामना है कि हो। वह सपना पूरा हो सकता है।

अंतिम बात, एक मित्र ने पूछा है कि क्या हम विश्वास करना छोड़ दें-- महापुरुषों पर, ऋषियों पर, मुनियों पर, शास्त्रों पर?

मैं यह कहता हूं कि विश्वास सिर्फ एक मूल्यवान है--वह अपने पर विश्वास। बाकी कोई विश्वास मूल्यवान नहीं है। और ध्यान रहे, जो अपने पर विश्वास नहीं करता, वही किसी दूसरे पर विश्वास करने की खोज में निकलता है। दूसरे पर विश्वास, अपने पर अविश्वास है। अपने पर अविश्वास जो है, वही दूसरे पर विश्वास बनता है। दूसरे पर विश्वास आत्म-अविश्वास के कारण है। और जो अपने पर ही विश्वास नहीं कर पाता, उसका दूसरे पर किए विश्वास का कितना मूल्य है, कितना अर्थ है? ऋषि-मुनियों को खोज रहे हो, ताकि अपने से बच सको? किसी दूसरे के पैर पकड़ रहे हैं, ताकि अपने से बच जाएं? किसी दूसरे का सहारा पकड़ रहे हैं, ताकि अपनी ताकत का तो कोई भरोसा नहीं है। किसी और की ताकत से चल जाए काम। लेकिन दुनिया में अपने ही पैरों से चलना पड़ता है। अपनी ही आंखों से देखना पड़ता है। अपने ही प्राणों से जीना पड़ता है। स्वयं ही जीना पड़ता है, स्वयं ही मरना पड़ता है।

न कोई ऋषि आपके लिए जी सकते हैं, न कोई ऋषि आपके लिए मर सकते हैं, न कोई ऋषि आपके लिए श्वास ले सकते हैं। आपकी आत्मा को आपको ही जगाना है। और यह तभी संभव होगा जब विश्वास सब तरफ से हट जाए और एक इस बिंदु पर आ जाए, वह जो मैं स्वयं हूं। आत्मविश्वास के अतिरिक्त धार्मिक आदमी का और कोई लक्षण नहीं है। बुद्धिमान आदमी अपने पर विश्वास करता है, निर्बुद्धि दूसरे पर विश्वास करता है।
और ध्यान रहे, जो जितना दूसरे पर विश्वास करता है उतना ही बुद्धिहीन होता चला जाता है। क्योंकि अपनी बुद्धि को जगने का कोई कारण नहीं रह जाता। अपनी बुद्धि को जगाना हो तो सब तरफ से अपने विश्वास को खींच लो और एक इस बिंदु पर केंद्रित कर दो--वह जो मैं हूं। इतनी बुद्धि, इतना विवेक, इतना विचार, इतनी शक्ति जग सकती है कि जिन ऋषि-मुनियों के चरणों में आप हाथ जोड़े खड़े थे, वैसे ही ऋषि-मुनि आपके अपने ही भीतर पैदा हो सकते हैं। वे उनके भीतर कैसे पैदा हो गए हैं?
सारे ऋषि-मुनि हमारे जैसे लोग थे, हमारी जैसी ही हड्डी-मांस-मज्जा से बने हुए। कोई महावीर, कोई बुद्ध, कोई कृष्ण और क्राइस्ट हमसे भिन्न नहीं हैं--हम ही हैं। लेकिन हम सोए हुए हैं और वे जागे हुए हैं, इससे ज्यादा और कोई भेद नहीं है। और हम भी जाग सकते हैं। लेकिन पूछे कोई, महावीर किस पर विश्वास करते हैं? कोई पूछे कि जीसस क्राइस्ट किस पर विश्वास करते हैं? कोई पूछे कि मोहम्मद किस पर विश्वास करते हैं? कोई पूछे कि कृष्ण का विश्वास किस पर है? यह बड़ी अदभुत बात है कि इन सब का विश्वास स्वयं पर है, और हम सब का विश्वास इन पर है। ये सब अपने पर विश्वास करते हैं। वह जो भीतर बैठी हुई चेतना है उस पर ही इनकी श्रद्धा और आस्था है। और हमारी अपने को छोड़ कर और कहीं भी हो सकती है।
ध्यान रहे, जो श्रद्धा अपने से बाहर जाती है वह श्रद्धा अश्रद्धा को
ही छिपाने का उपाय है। ध्यान रहे, जो विश्वास अपने पर ही नहीं है, वह विश्वास किसी पर भी कभी नहीं हो सकता। वह सिर्फ भूल है, वह सिर्फ एक असत्य है। वह एक झूठा पर्दा है, जिसकी आड़ में हम अपनी कमी को छिपाए चले जाते हैं।
आत्मश्रद्धा के लिए मेरा आग्रह है।
इस संबंध में कुछ और प्रश्न रह गए हैं, वह कल सुबह उनकी हम बात करेंगे।
आज सांझ दूसरे सूत्र पर बात करूंगा और कल सांझ तीसरे सूत्र पर।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रेम गंगा
तीसरा प्रवचन

विश्वास से मुक्ति-2

मेरे प्रिय आत्मन्।
पिछली चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न आए हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि आप शास्त्र पर, गुरु पर, दूसरों पर विश्वास करने में मना करते हैं तो उस स्थिति में तो बाहर के सारे कार्य चलने बंद हो जाएंगे? और विज्ञान की आप बात करते हैं तो वैज्ञानिक भी पिछले वैज्ञानिकों पर विश्वास करता है, तब ही आगे बढ़ता है।

इस संबंध में कुछ बातें समझ लेनी उपयोगी होंगी। पहली बात तो यह कि बाहर के संबंध में, जीवन के रोज के कार्यों के संबंध में, या विज्ञान के संबंध में हम जो दूसरों पर विश्वास कर लेते हैं, उससे शायद थोड़ा बहुत काम चल जाता है। क्योंकि जो बाहर है, वह दूसरे के द्वारा भी बताया जा सकता है, और जाना जा सकता है। लेकिन जो स्वयं मेरे भीतर है, वह किसी दूसरे के द्वारा न बताया जा सकता है, और न किसी दूसरे के द्वारा जाना जा सकता है। मेरे बाहर जो है, वह आपके बाहर भी है, हम दोनों उसके बाहर खड़े होकर उसे देख सकते हैं। लेकिन जो मेरे भीतर है, उसे मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं देख सकता। इसलिए बाहर की चीजों के संबंध में हम दूसरों की सुनी हुई बातों पर भी काम चला लेते हैं। लेकिन भीतर के संबंध में अगर दूसरों की सुनी हुई बातों पर काम चलाने की कोशिश की तो वह जो भीतर सोया हुआ है, उसके जागने का कभी कोई मौका नहीं आएगा।
विज्ञान बाहर की खोज है, और धर्म भीतर की। इसलिए यह बहुत अजीब सी बात मालूम पड़ेगी कि विज्ञान शास्त्रों पर, परंपराओं पर निर्भर होता है। लेकिन धर्म शास्त्रों और परंपराओं पर निर्भर नहीं होते। अगर न्यूटन पैदा न हो, तो आइंस्टीन पैदा नहीं हो सकता है। बीच की एक कड़ी अगर न हो, तो आगे की कड़ी विज्ञान में नहीं आएगा। न्यूटन के कंधों पर खड़े हुए बिना आइंस्टीन के जन्म की कोई संभावना नहीं है। लेकिन अगर महावीर न हों, तो बुद्ध के होने में कोई भी बाधा नहीं पड़ती है। और बुद्ध और महावीर दोनों न हों, तो भी रमण के या अरविंद के पैदा होने में कोई बाधा नहीं पड़ती।
आध्यात्मिक जगत में हम किसी के कंधों पर खड़े नहीं होते, अपने ही पैरों
पर खड़े होते हैं। आध्यात्मिक जीवन की कोई परंपरा नहीं है, कोई कड़ियां नहीं हैं। आध्यात्मिक जीवन अदभुत अर्थों में वैयक्तिक जीवन है। वह जो अध्यात्म जिसे हम कहते हैं, वह मूलतः उस दिशा में व्यक्ति परिपूर्ण रूप से स्वतंत्र है। इसलिए कृष्ण ने क्या कहा है, उसे पढ़ लेने से या मान लेने से आप स्वयं को नहीं जान लेंगे। हां, अगर आप स्वयं को जान लें तो कृष्ण ने जो कहा है उसे जरूर समझने में सफल हो जाएंगे। शास्त्र से आत्मिक ज्ञान उपलब्ध नहीं होता, लेकिन आत्मिक ज्ञान उपलब्ध हो तो शास्त्र सार्थक जरूर हो जाते हैं।
प्रेम के संबंध में मैं कुछ शास्त्र पढ़ लूं, तो पढ़ सकता हूं। लेकिन कोई भी शास्त्र मुझे प्रेम का अनुभव नहीं दे सकता। और खतरा यह है कि यदि प्रेम के संबंध में बहुत सी बातें मुझे याद हो जाएं तो यह भ्रांति भी हो सकती है कि मैं प्रेम को जानने लगा हूं। प्रेम को जानने के लिए तो मुझे ही प्रेम से गुजरना पड़ेगा। वह प्रेम का स्वाद और सुगंध मेरे प्रेम से गुजरे बिना नहीं उपलब्ध होने वाली। प्रेम के संबंध में बहुत कुछ जान लेना भी प्रेम को जानना नहीं है। प्रेम को जानने के लिए व्यक्तिगत अनुभूति अपरिहार्य है। उससे गुजरे बिना कोई रास्ता नहीं है। हां, प्रेम को मैं जान लूं तो प्रेम के संबंध में कही गई सारी बातों का अर्थ मेरे सामने स्पष्ट हो जाएगा। लेकिन इससे उलटा नहीं हो सकता।
एक आदमी तैरने के संबंध में सारे शास्त्र पढ़ ले और उन पर विश्वास कर
ले और तैरने के संबंध में बहुत बड़ा पंडित हो जाए--तैरने पर प्रवचन दे, तैरने पर थीसिस लिखे, पीएचड़ी करे, लेकिन भूल कर भी उस आदमी को कभी नदी में

धक्का मत दे देना। क्योंकि वह आदमी तैरने के संबंध में जानता था, तैरने को नहीं। तैरने के संबंध में जाना हुआ तैरना नहीं बन सकता है। और यह भी हो सकता है कि कोई तैरना जानता हो और उससे आप पूछें कि तैरने के संबंध में कुछ बताओ, तो वह कहे कि मैं तैर कर बता सकता हूं, और क्या बताऊं?
जीवन की जितनी गहरी अनुभूतियां हैं--चाहे वे विवेक की हों, चाहे प्रेम
की हों, चाहे प्रार्थना की हों, वे गहरी अनुभूतियों के संबंध में किसी दूसरे पर विश्वास करना आत्मघातक है। स्वयं की खोज ही वहां मार्ग है। और मनुष्य की जो अंतरात्मा है, उसकी जो मौलिक प्रतिभा है, उसका आविष्कार करना हो तो जितनी दूर तक बन सके, जितने गहरे तक बन सके उतना अपने पर ही निर्भर होना उचित है। स्व-निर्भरता ही अंततः आत्मा में प्रवेश का द्वार बनती है। पर-निर्भरता अंततः परावलंबन, और दूसरे के आश्रय में गुलामी बन जाती है, पर-निर्भरता बन जाती है। पर-निर्भरता परतंत्रता का सूत्र है, स्व-निर्भरता स्वतंत्रता का सूत्र है।
वह जो मैंने कहा कि विश्वास मत करें, विचार करें। इसीलिए कहा कि विचार मुक्त करता है, स्वयं में प्रतिष्ठित करता है। और विश्वास परतंत्र करता है, दूसरे पर निर्भर करता है। दूसरे पर निर्भर हुई आत्मा अंधकार से अंधकार में ही भटकती चली जाती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आप यह मानना छोड़ दें कि बाएं चलना उचित है, बाएं चलना नियम है; इसका यह मतलब भी नहीं है कि आप मानना छोड़ दें कि क्यू में खड़े होना उचित है, क्योंकि आप विश्वास करना बंद करते हैं। बाहर की जिंदगी का जो थोड़ा सा फैलाव और खेल है, वह खेल हमारे सब के आपस में निर्धारित नियमों के आधार पर है। उन नियमों को हम मानते हैं, इसलिए वह खेल चलता है। नियम मानना छोड़ दें, वह खेल अभी बंद हो जाएगा।
जैसे कोई शतरंज खेल रहा है, अब शतरंज खेलना हो तो विश्वास के आधार पर
ही खेला जा सकता है। क्योंकि शतरंज कोई सत्य नहीं है। सिर्फ मनोकल्पित खेल है। और अगर हम शतरंज के नियम छोड़ दें, घोड़े को हाथी मानने लगें, हाथी को घोड़ा कहने लगें, क्योंकि मैं कहूं कि मैं किसी की मानूंगा नहीं, मैं तो अपना ही निर्णय करूंगा तो फिर खेल एक इंच आगे नहीं बढ़ सकता है। खेल काल्पनिक है और दो व्यक्तियों की स्वीकृति पर निर्भर है।
यह जो बाहर की जिंदगी हमने बसाई है--यह जो घर है, गृहस्थी है, दुकान है, बाजार है, यह एक बहुत बड़ा खेल है, जो हमारी सबकी सहमति पर और सबके ऊपर निर्भर है। यह विश्वास पर चल रहा है। अगर विश्वास तोड़ दें, इस खेल के आप बाहर हो जाते हैं। इस खेल में विश्वास जरूरी है। क्योंकि यह खेल सत्य नहीं है।
लेकिन सत्य के लिए विश्वास घातक है। क्योंकि सत्य कोई खेल नहीं है,
वह कोई हमारी स्वीकृतियों पर निर्भर नहीं है, वह हमसे मुक्त है। और सत्य जैसा है हमें उसे वैसा ही जानना होगा। और खेल जैसा है, वह वैसा है, जैसा हमने उसे बनाया है। लेकिन हम खेल के आदी हैं। हमने अलग-अलग खेल स्वीकार किए हुए हैं। एक बच्चा हिंदी घर में पैदा होता है तो उसने एक हिंदी भाषा का खेल स्वीकार किया है। एक चीनी भाषा में पैदा हुआ बच्चा है, उसने चीनी भाषा का खेल स्वीकार किया है। एक अंग्रेजी भाषा में पैदा हुआ बच्चा है, उसने अंग्रेजी भाषा का खेल स्वीकार किया है। यह कोई सत्य नहीं है। ये कामचलाऊ खेल हैं।
इसलिए हिंदी भाषा बोलने वाला मां कहेगा, अंग्रेजी भाषा बोलने वाला मदर कहेगा, दोनों के बीच कोई मेल नहीं है। क्योंकि दोनों के अलग खेल हैं, दोनों की स्वीकृतियां अलग हैं। अब एक तीसरा खेल शुरू करना पड़े, अगर हम यह माने कि मदर और मां एक ही अर्थ रखते हैं तो फिर अंग्रेजी और हिंदी का एक मिला-जुला खेल शुरू होगा। भाषाएं खेल पर खड़ी हैं, लेकिन सत्य खेल पर खड़ा हुआ नहीं है। सत्य जैसा है हमें उसे वैसा ही जानना होगा। और जीवन का जो हमारा पूरा का पूरा जाल है, वह वैसा है जैसा हमने उसे बनाया है। अगर हम उसे ऐसा न बनाएं, तो वह ऐसा नहीं होगा।
और अगर कोई न खेलना चाहे तो कोई मजबूर नहीं किया जा सकता। वह खेल के बाहर हो सकता है। लेकिन खेल के बाहर होकर बहुत असुविधा में पड़ जाएगा। क्योंकि सारे लोग उस नियम की स्वीकृति पर राजी हैं। इसका यह मतलब हुआ कि

बाहर की दुनिया में विश्वास अर्थपूर्ण है। क्योंकि बाहर की दुनिया असत्य पर खड़ी है। और स्वयं के भीतर प्रवेश करना हो तो विश्वास महत्वपूर्ण नहीं है। वहां भीतर सत्य की खोज करनी है--किसी खेल की, किसी नियम की नहीं। और जो परम वैज्ञानिक है, वह बाहर की खोज पर ही नहीं रुक जाता, परम वैज्ञानिक अंतस की खोज की यात्रा पर भी निकलता है।
इसलिए मैं कहना चाहूंगाः पूरब अवैज्ञानिक है, पश्चिम अधूरा वैज्ञानिक है। अगर पश्चिम का विज्ञान और बढ़ेगा तो वह बाहर से भीतर की तरफ आना शुरू हो जाएगा। आना ही पड़ेगा। आने के पहले कदम पड़ने शुरू हो गए हैं, पहली किरणें दिखाई पड़नी शुरू हो गई हैं। अगर विज्ञान पूरा होगा तो यह असंभव है कि हम बाहर की बातों को ही जानने में सारा समय लगा दें, और उससे वंचित रह जाएं--जो कि भीतर है।
इसलिए मैं धर्म को परम विज्ञान कहता हूं, सुप्रीम साइंस कहता हूं। लेकिन जिस धर्म को हम माने हुए बैठे हैं वह परम अंधविश्वास है, परम विज्ञान नहीं। क्योंकि हमने उसका आधार विश्वास बना रखा है। हमने उसकी आधारशिला विचार पर नहीं रखी है। यह भी ध्यान रहे कि विश्वास के कारण ही दुनिया में इतने धर्म हैं। अगर विचार होगा, इतने धर्म नहीं होंगे। एक ही धर्म होगा। सत्य तो एक ही होता है। विज्ञान एक है, चाहे वह विज्ञान रूस में पैदा हो, और चाहे अमरीका में, और चाहे चीन में, और चाहे भारत में। उसके नियम एक हैं। हिंदू का विज्ञान अलग और मुसलमान का विज्ञान अलग और पूंजीवादी का विज्ञान अलग और साम्यवादी का विज्ञान अलग, ऐसा नहीं हो सकता। सत्य एक है, लेकिन धर्म तीन सौ हैं जमीन पर।
थोड़ा सोचना जरूरी है कि ये धर्म सत्य की बात कर रहे हैं या सत्य के संबंध में मनोकल्पित विश्वासों की बात कर रहे हैं। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। उसका मतलब तीन सौ विश्वास की प्रक्रियाएं हैं। अगर विचार की प्रक्रिया होगी तो एक ही धर्म होगा, जैसे एक ही विज्ञान है। और अगर विचार अपनी अंतिम परिणति पर पहुंचेगा तो विज्ञान और धर्म एक हो जाएंगे। विज्ञान होगा बाहर का धर्म, और धर्म होगा भीतर का विज्ञान। वैज्ञानिक प्रक्रिया अगर विचार से चलेगी तो सूत्र तो वही हैं, चाहे बाहर के सत्य की खोज करनी हो, चाहे भीतर के सत्य की खोज करनी हो।
लेकिन आज जो इतने धर्मों का जाल दिखाई पड़ता है, वह जाल धर्मों का नहीं है। विश्वासों का है। और सब विश्वास अंधे होते हैं। किसी विश्वास के पास आंख नहीं होती। आंख तो विचार के पास है। और जिस विश्वास के पास आंख हो, जानना कि वह विश्वास नहीं है--विचार है। और जिस विचार के पास भी आंख न हो, जानना कि वह धोखा है विचार का, वह विश्वास नहीं है।
आंख पहचान है। आप जो भी मानते हैं, मैं जो भी मानता हूं, वह मेरे किसी अनुभव पर खड़ा होता है या किसी दूसरे के अनुभव पर खड़ा है? अगर दूसरे के अनुभव पर खड़ा है तो मैं तो अज्ञानी हूं। और अज्ञान में अंधे की तरह उसे माने चला जा रहा हूं। अंधे कहीं भी नहीं पहुंचते। अंधे कहीं पहुंच ही नहीं सकते। सत्य के रास्ते पर तो अंधे की कोई गति नहीं है। क्योंकि सत्य का रास्ता दर्शन का रास्ता है, वहां खुली आंख चाहिए। तभी सत्य का दर्शन हो सकता है।
इसलिए मैंने कहा कि विश्वास से मुक्त हों, विचार में प्रतिष्ठित हों। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आप जाएं और अपनी मां से कहें कि मैं कैसे तुझे मां मानूं, क्योंकि मैं विश्वास नहीं कर सकता, मैं तो विचार करूंगा। मैं अपने पिता को कैसे पिता मानूं, क्योंकि मैं कैसे विश्वास करूं कि आप मेरे पिता हैं? ये सब खेल की बातें हैं। ये बाहर के जो हमारे सारे अंतर्संबंध हैं, ये स्वीकृत खेल के संबंध हैं। हम खेल बदल लें और हालत बदल जाएगी। हम खेल के नियम बदल लें, हालत बदल जाएगी।
एक जमाना था कि पिता तो कोई भी नहीं होता था। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि पिता नया शब्द है, काका पुराना शब्द है। अंकल पुराना शब्द है, फादर नया शब्द है। एक जमाना था मातृसत्ता सारी दुनिया में... पति तो कोई नहीं होता था, बहुत से पति होते थे, बहुपति होते थे। और बच्चे को पता ही नहीं चलता था कि कौन पिता है। तो बच्चा सभी को काका कहता था, पिता तो कोई था ही

नहीं। मां थी, काका था, पिता बहुत बाद में आया। जब एक पत्नी पर निर्धारित हो गई बात और हमने खेल में यह तय कर लिया कि अब खेल का यही नियम रहेगा कि एक ही पति होगा और एक ही पत्नी होगी, तब पिता पैदा हो पाया। नहीं तो पिता का कोई पता नहीं था।
कल दुनिया फिर बदल सकती है। और यह हालत आ सकती है, जैसा कि आज हिप्पी
और बीटन और बीटनीक पश्चिम में कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि एक पत्नी और एक पति का संबंध यह कानून से तय करना खतरनाक है। हम किसी कानून को नहीं मानते। हम तो प्रेम को मानते हैं। जब तक प्रेम है तब तक ठीक, जब प्रेम नहीं तो हम अलग हो जाएंगे। इसलिए किसी बंधन की कोई जरूरत नहीं है। दो मित्र हैं, वे साथ रह रहे हैं। अगर यह बात स्वीकृत हो गई, और यह स्वीकृत हो भी सकती है। क्योंकि जिंदगी रोज बदलती है, और नये प्रयोग करती है, और नये खेल ईजाद करती है--तो पिता फिर खो जाएगा। पिता का बचना फिर मुश्किल हो जाएगा।
यह सारा सामाजिक खेल है। सामाजिक मिथ हम एक सामाजिक पुराण, कल्पना तय करते हैं, समाज चलता है उससे, उससे सुविधा होती है। अब बाएं चलना कोई कानून है? आधी दुनिया दाएं चलती है, उसकी सड़कों पर लिखा है दाएं चलो और हमारी सड़कों पर लिखा है बाएं चलो। यह हमारी मौज है। दोनों से काम चल जाता है, बाएं चलने से भी और दाएं चलने से भी। मतलब केवल इतना है कि लोग एक तरफ से चलें, सारी तरफ से सारे लोग चलने लगें तो असुविधा होगी। यह सारी की सारी बातें विश्वास पर ही खड़ी हैं। और इसलिए इन बातों के लिए मैंने नहीं कहा है कि आप अविश्वास करना शुरू करें।

एक मित्र ने पूछा है कि गीता कहती है कि जो संशय से भरे लोग हैं, वे भटक जाते हैं, वे विनष्ट हो जाते हैं, और आप कहते हैं, विश्वास मत करो, तब तो संशय पैदा होगा?

लेकिन शायद उन्हें अंदाज नहीं संशय और संदेह में फर्क है। संदेह का अर्थ हैः डाउट। संदेह का अर्थ हैः किसी चीज को अंधे की तरह न मान लेना-- सोचना, विचारना, पूछना, प्रश्न करना। संशय का अर्थ हैः इनडिसीसिवनेस। संशय का अर्थ हैः अनिश्चितमना। संशय का अर्थ हैः तय करने की असमर्थता की स्थिति। यह ठीक है, कि वह ठीक है; यह भी ठीक मालूम होता है, वह भी ठीक मालूम होता है; यह भी ठीक नहीं मालूम होता, वह भी ठीक नहीं मालूम होता--ऐसा जो चित्त इनडिसीसिव हो, तो ऐसा चित्त भटक जाता है। लेकिन विचार करने वाला चित्त तो डिसीसिव होता है। जो विचार करता है वह तो निर्णय पर पहुंचने लगता है। क्योंकि विचार निर्णय पर पहुंचने की पद्यति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
एक आदमी चौराहे पर खड़ा है और सोचता है कि बाएं जाऊं कि दाएं जाऊं। फिर
एक क्षण बाएं बढ़ता है, और सोचता है कि नहीं, नहीं बाएं जाना ठीक नहीं, दाएं ही चला जाऊं। फिर दो कदम दाएं बढ़ता है, फिर सोचता है कि नहीं, दाएं जाना ठीक नहीं, बाएं ही चला जाऊं। और उसी चौरस्ते पर भटकता है। ऐसा चित्त, ऐसे संशय से भरा हुआ चित्त विनष्ट हो जाएगा। ठीक भी है।
लेकिन संशय और संदेह में फर्क है। संदेह का अर्थ संशय नहीं है। संदेह
का अर्थ हैः मैं विचार करूंगा, निर्णय करूंगा, तब स्वीकार करूंगा। संदेह भी निर्णय पर ले जाएगा। संदेह असंशय पर ले जाएगा। और सच बात तो यह है कि विश्वास करने वाले लोग संशय से कभी मुक्त नहीं होते। क्योंकि विश्वास आपका अनुभव नहीं है। और जो आपका अनुभव नहीं है, आप कितने ही जोर से मान लें, आपके भीतर कोई आवाज कहती ही रहेगी कि पता नहीं ठीक है या नहीं। आप ईश्वर को मानते हैं, विश्वास करते हैं। लेकिन भीतर मन मौके-बेमौके कहता रहता है कि पता नहीं ईश्वर है भी या नहीं? मानते तो हैं, लेकिन है या नहीं। आप विश्वास करते हैं कि आत्मा है, और अमर है। लेकिन भीतर मन कहता रहता है कि पता नहीं मरने के बाद कुछ बचता है या नहीं बचता?
मेरे पड़ोस में एक घर में एक मित्र की पत्नी की मृत्यु हो गई। उनके घर मैं उनको मिलने गया। देखा, पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हैं और सब उन्हें समझा रहे हैं कि आप दुखी क्यों हो रहे हैं, शरीर ही मरता है, आत्मा तो अमर है।

मैंने सोचा, उस पड़ोस में रहने वाले लोग बड़े ज्ञानी हैं। सभी समझा रहे हैं, यह पड़ोस तो बड़े ज्ञानियों का है। यहां सबको पता है कि आत्मा अमर है। लेकिन जिसकी पत्नी मर गई है वे रोए ही चले जाते हैं, उनकी आंख से आंसू ही टपक रहे हैं। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है कि आत्मा अमर है या नहीं। फिर वे आत्मा से शादी करके लाए भी नहीं थे, जिससे शादी करके लाए थे वह मरा हुआ पड़ा है। अब आत्मा अमर भी होगी तो भी क्या मतलब होता है, आत्मा कहीं पत्नी बन सकती है? होगी भी तो क्या मतलब?
इस आदमी की पत्नी खो गई है, लेकिन लोग समझा रहे हैं। फिर भी मैंने सोचा
कि पड़ोस के लोग बड़े ज्ञानी हैं। जो आदमी सबसे ज्यादा समझा रहा था, दो महीने बाद दुर्भाग्य से उसका लड़का गुजर गया। उसके घर भी मैं गया। देखा कि वे रो रहे हैं, और दूसरे पास-पड़ोस के लोग समझा रहे हैं। वे सज्जन जो विधुर हो गए थे, वे भी समझा रहे हैं कि क्यों दुख कर रहे हैं, यह सब तो चलता है। आत्मा तो अमर है, शरीर तो जाता है। तब मुझे बड़ी परेशानी हुई। मैं उनसे जिनका पुत्र मर गया था उनसे पूछने लगा कि आप तो भलीभांति जानते हैं कि आत्मा अमर है, आपको तो मैंने समझाते सुना है। वे कहने लगे कि वे सब समझाने की बातें हैं, दूसरों के समझाने के काम पड़ जाती हैं। जब अपने पर मुसीबत आती है तो बड़ा संशय होने लगता है।
विश्वासी कभी भी संशय के बाहर नहीं होता। इसलिए गीता कहती है कि संश्यात्मा विनष्यति। और मैं कहता हूं कि जो भी विश्वास करते हैं, वे भी सब विनष्ट हो जाते हैं। क्योंकि विश्वास के भीतर संशय हमेशा मौजूद होता है। असल विश्वास हम करते ही उन चीजों पर हैं जिन पर हमें संशय है। जिन पर हमें संशय नहीं है उन पर हम विश्वास करते ही नहीं, उन्हें हम जानते हैं। आप सूरज के होने पर विश्वास करते हैं? नहीं, आप कहेंगे, विश्वास की जरूरत नहीं--सूरज है, हम जानते हैं। आप परमात्मा पर विश्वास करते हैं, क्योंकि परमात्मा का होने का आपको कोई भी पता नहीं है। जो आप नहीं जानते उस पर विश्वास करते हैं, जिसे आप जानते हैं उस पर विश्वास की कोई जरूरत नहीं है। वह तो निर्णयात्मक रूप से आपका ज्ञान बन गया।
विश्वास ऊपर होता है, भीतर संशय होता है। इसलिए सभी विश्वास करने वाले भटक जाते हैं। लेकिन अगर भीतर से संशय को मिटाना है तो ऊपर से संदेह को स्वीकार करना पड़ेगा। संदेह की स्वीकृति संशय के नष्ट करने की प्रक्रिया है। संदेह करिए, मत मानिए कि ईश्वर है, खोजिए, जांचिए, पड़तालिए, विचारिए, अनुभव करिए, ध्यान में उतरिए, प्रार्थना में डूबिए, पता लगाइए-- है? जिस दिन पता चल जाएगा--है, उस दिन संदेह भी मिट जाएगा, संशय भी मिट जाएगा, उस दिन विश्वास की जरूरत भी नहीं होगी। उस दिन ज्ञान का जन्म होता है।
ज्ञान जहां जन्मता है, वहीं संशय नष्ट होता है। और ज्ञान वहां जन्मता है, जहां संदेह से यात्रा शुरू होती है। ज्ञान वहां नहीं जन्मता जहां विश्वास से यात्रा शुरू होती है। विश्वासी हमेशा अज्ञान में ही जीता है, और मर जाता है। यह बात उलटी मालूम पड़ेगी। आमतौर से हम सोचते हैं कि विश्वासी धार्मिक है। और मैं आपसे कहना चाहता हूंः विश्वासी धार्मिक नहीं है, विश्वासी पूरी तरह अधार्मिक है। लेकिन अपने अधर्म से डर कर विश्वास की खोल ओढ़े हुए है। भीतर अधर्म है, भीतर अविश्वास है, भीतर सब संदेह है। और ऊपर से वह अपने विश्वास को पकड़े हुए है। और डरा हुआ है भीतर इसलिए जोर से पकड़े हुए है।
जब कोई आदमी कहता है कि मैं दृढ़ विश्वास करता हूं तब, तब, तब... तब समझ लेना आप कि भीतर बहुत घबड़ाया हुआ है, इसलिए दृढ़ विश्वास करना पड़ रहा है। दृढ़ विश्वास किसके खिलाफ? अपने ही खिलाफ। और अपने भीतर प्राण कंप रहे हैं, डर लग रहा है, संदेह मालूम हो रहा है। उसको दबा रहा है, और कह रहा है कि मैं पक्का विश्वासी हूं, मैं कभी संदेह नहीं करूंगा।
संदेह भीतर मौजूद रहेगा। जीवन, अनंत जीवन भी कोई आदमी विश्वास करे तो संदेह से मुक्त नहीं हो सकता। संदेह ही करे और इतना संदेह करे कि सत्य की खोज पर बढ़ता चला जाए, पूछता चला जाए तो एक दिन वहां पहुंच जाएगा जहां

उदघाटन होता है, सत्य का। संदेह गिर जाएंगे अपने आप। जैसे दीये के जलने पर अंधेरा चला जाता है, ऐसे ही सत्य के उदघाटन पर संदेह विलीन हो जाते हैं। लेकिन वे सत्य के उदघाटन पर ही विलीन होते हैं, उसके पहले नहीं। और उसके पहले कि उन्हें विलीन करने की कोशिश करता है, केवल दबा लेता है, विलीन नहीं कर पाता है। भीतर वे बैठे रहते हैं। सब आस्तिकों के भीतर नास्तिक मौजूद है। सब आस्तिकों के भीतर नास्तिक मौजूद है। हां, उस आदमी के भीतर भर नास्तिक नहीं है जिसने विश्वास नहीं किया है, और जिसने खोज की, और जिसने पा लिया। लेकिन वह अपने को आस्तिक भी नहीं कहेगा। क्योंकि आस्तिक तो वह अपने को कहता है जो विश्वास करता है, जो जान लेता है। वह कहेगाः न मैं नास्तिक हूं, न मैं आस्तिक हूं। मैंने जान लिया है।
श्री अरविंद से किसी ने पूछा, एक जर्मन यात्री आया और उनसे पूछने लगा,
डू यू बिलीव इन गॉड? आप विश्वास करते हैं ईश्वर में? श्री अरविंद ने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं। तो आदमी तो बहुत हैरान हुआ। वह तो यह सोच कर आया था कि परम आस्तिक के पास जा रहा है, जो विश्वास करता होगा। जब अरविंद ने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं; तो उसने कहा कि हैरानी, आप विश्वास नहीं करते, आप अविश्वास करते हैं! अरविंद ने कहा कि नहीं, अविश्वास भी नहीं करता। तो उसने कहा कि फिर आप क्या करते हैं? अरविंद ने कहा कि आई डू नॉट बिलीव, आई डू नॉट डिसबिलीव--आई नो। न मैं विश्वास करता, न मैं अविश्वास करता--मैं जानता हूं। यह जानना बात ही और है। न यहां विश्वास है, न यहां अविश्वास है। इस जानने का ही अर्थ है। और इस जानने की दिशा में जाना हो तो विश्वास की गलत दिशा नहीं पकड़नी चाहिए। विचार की सम्यक दिशा ही पकड़नी होगी।

एक मित्र ने पूछा है कि आप ये बातें समझा रहे हैं, तो हम आप पर विश्वास
कर लेंगे? तो फिर वही बात हो जाएगी।

मैं नहीं कहता कि मुझ पर आप विश्वास करें। मैं कैसे कहूंगा कि मुझ पर विश्वास करो? मैं कहूंगा कि जो मैं कह रहा हूंः उसकोसोचें, समझें, खोजें, परखें। अगर कहीं उसमें कोई सत्य कभी मिल जाए तो विश्वास करने की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी, आप जान लेंगे। और अगर सत्य न मिले तो विश्वास करने की कोई जरूरत ही नहीं। आप उसे फेंक देंगे। मैं जो कह रहा हूं उस पर विश्वास करने की कोई भी जरूरत नहीं है। उस पर भी पूरी तरह संदेह और खोज करने की जरूरत है। मैं ऐसे, उन व्यक्तियों में से नहीं हूं जो आपसे एक गुरु छीन ले, और उसकी जगह खुद गुरु बन जाऊं; एक शास्त्र छीन ले, और मैं आपका शास्त्र बन जाऊं; एक विश्वास छीन ले, और मैं आपका विश्वास बन जाऊं। मैं आपसे विश्वास मात्र छीनना चाहता हूं। उसमें मेरी बात पर विश्वास करने का कोई भी सवाल नहीं है। सोचना भी मत, मन हो अगर कि हां इनकी बात पर विश्वास कर लिया जाए तो समझना कि यह गलत है।
मन तो बहुत जल्दी कोशिश करता है किसी पर विश्वास कर लो। मेरे पास ही लोग आ जाते हैं, वे मेरा ही पैर पकड़ लेते हैं, वे कहते हैं कि हम तो आपको ही गुरु बनाएंगे। मैं उनको कहता हूं कि तुम पागल हो गए हो! मैं दिन-रात समझा रहा हूं कि कोई गुरु नहीं है, सिवाय तुम अपने गुरु के और कोई गुरु नहीं है। वह तुम्हारा गुरु तुम्हारे भीतर है, तुम मेरे पीछे क्यों पड़ गए हो? वे कहते हैं कि नहीं, हम मानेंगे नहीं, आप कितना ही इनकार करिए, हम तो आपको ही गुरु बनाएंगे।
ऐसा अंधापन है, इतना पागलपन है! लेकिन गुरुओं ने सिखाया है हजारों सालों से। उस सिखावन का इतना जहर भीतर पहुंच गया है कि अगर कोई गुरुओं के खिलाफ भी बोल रहा हो, गुरूडम के खिलाफ बोल रहा हो, तो लगता है चलो इसी आदमी को गुरु बना लें। और ऐसा ही होता रहा है। बुद्ध ने लोगों को समझाया कि मूर्ति-पूजा व्यर्थ है। आज बुद्ध की जमीन पर जितनी मूर्तियां हैं उतनी किसी दूसरे आदमी की नहीं है। अगर बुद्ध लौट आएं तो अपनी छाती पीट कर रोने लगेंगे कि इन नासमझों को मैंने समझाया था कि मूर्ति व्यर्थ है, और मेरी ही मूर्तिंयां सबसे ज्यादा हैं।

चीन में एक मंदिर है, जिसमें दस हजार मूर्तियों का मंदिर है, दस हजार बुद्ध की मूर्तियां एक मंदिर में हैं। बड़े-बड़े पहाड़ खोद डाले हैं। न मालूम कितने मंदिर बना रखे हैं। सारी जमीन भर दी है बुद्ध की मूर्तियों से। बुद्ध की मूर्तियां सबसे ज्यादा हैं। यह जान कर आपको हैरानी होगी कि उर्दू में बुत शब्द है मूर्ति के लिए, वह बुद्ध का अपभ्रंश है। बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध यानी मूर्ति हो गया। उर्दू में वे बुत कहते हैं, वह बुद्ध का ही रूप है। बुद्ध यानी मूर्ति। इतनी मूर्तियां फैली हैं सारे एशिया पर कि जिन लोगों ने देखा, पहली दफा देखा होगा, उन्होंने कहा, यह क्या है? तो लोगों ने कहा होगाः बुद्ध। तो उन्होंने समझा कि इसको बुद्ध कहते हैं। तो अब उर्दू में बुत ही कहा जाता है। और बुत का मतलब सिर्फ बुद्ध।
यह बुद्ध कभी सोच भी नहीं सकते थे कि यह हो जाएगा। महावीर ने कभी सोचा होगा? महावीर नग्न खड़े हैं, उनके पास वस्त्र भी नहीं हैं। लेकिन महावीर के मानने वालों के पास जितना सामान और परिग्रह इकट्ठा हुआ है, उतना किसी दूसरे के पास इकट्ठा नहीं है। महावीर नंगे खड़े हैं, उनके पास एक चीज नहीं है।
जबलपुर में मेरे एक मित्र हैं, उनकी दुकान का नाम हैः दिगंबर क्लॉथ स्टोर। और दिगंबर का मतलब होता हैः नंगा। महावीर के मानने वाले हैं, तो दिगंबर क्लॉथ स्टोर खोले हुए हैं। अगर महावीर आ जाएं तो बड़े हैरान होंगे कि मेरा मानने वाला कपड़ा बेच रहा है! और मैंने कपड़े ही छोड़ दिए थे। और लोगों के कपड़े छुड़वा दिए थे।
सारी दुनिया में ऐसा हुआ है, क्राइस्ट ने लोगों को समझाया कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। और ईसाईयों ने जितनी हत्याएं की हैं, उनका हिसाब लगाना मुश्किल है। इस्लाम का अर्थ हैः शांति का धर्म। इस्लाम शब्द का अर्थ हैः शांति। और इस्लाम ने जितनी अशांति फैलाई है, किसी और ने फैलाई न होगी। आदमी अजीब है, जो बात समझाई जाए उससे उलटा भी उसका मन समझने की तैयारी रखता है। असल में हम जो समझना चाहते हैं वही समझ लेते हैं, जो समझाया जाता है वह नहीं समझते हैं। मैं जो समझा रहा हूं वह आप कम समझ रहे हैं, आप जो समझना चाहते हैं वही समझ लेंगे और मेरे ऊपर थोपेंगे कि मैंने ऐसा कहा और हम उनको मानते हैं।
अगर हम मनुष्य-जाति के मन के विकास की पूरी कथा देखें तो बहुत आश्चर्य होगा, बहुत आश्चर्य होगा। मैं नहीं कहता हूं मुझ पर विश्वास करें, मैं तो निरंतर यही कह रहा हूं किसी पर विश्वास न करें--विचार करें, लेकिन इससे एक उलटा मतलब भी समझ लेंगे आप।

एक मित्र ने वह भी पूछा हैः उन्होंने पूछा है कि क्या आपका यह मतलब है
कि हम सब पर अविश्वास करें?

मेरा यह मतलब नहीं है। जब मैं कहता हूं कि किसी पर विश्वास न करें तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सब पर अविश्वास करें। अविश्वास भी एक प्रकार का विश्वास है। अविश्वास उलटा विश्वास है, नकारात्मक विश्वास है, निगेटिव बिलीफ है। एक आदमी कहता है कि मैं ईश्वर पर विश्वास करता हूं, यह भी विश्वास है। एक दूसरा आदमी कहता है कि मैं ईश्वर पर अविश्वास करता हूं, यह भी विश्वास है। न पहले वाला आदमी खोज पर गया है जानने कि ईश्वर है या नहीं, न दूसरा आदमी खोज पर गया है कि ईश्वर है या नहीं। एक ने बिना जाने मान लिया है कि--है, एक ने बिना जाने मान लिया है कि--नहीं है। दोनों विश्वास हैं, दोनों अंधें हैं। आस्तिक भी अंधा है, और नास्तिक भी अंधा है। इसलिए आस्तिक नास्तिक हो जाए कोई फर्क नहीं पड़ता, अंधापन जारी रहता है; नास्तिक आस्तिक हो जाए कोई फर्क नहीं पड़ता, अंधापन जारी रहता है।
मैंने सुना है, एक गांव में दो आदमी थे, दो पंडित थे, एक आस्तिक और एक नास्तिक। और उन दोनों की वजह से गांव बहुत परेशान था। गांव इसलिए परेशान था कि आस्तिक समझाता था कि आस्तिकता सच है, ईश्वर सच है। उसकी बातें भी सुन कर लगता था कि ठीक कहता है। और फिर नास्तिक समझाता था कि सब झूठ है, सब

बकवास है, न कोई ईश्वर है, न कोई आत्मा है; बस यह शरीर सब कुछ है, खाना-पीना सब कुछ है। उसकी बातें सुन कर भी लगता था कि ठीक है। गांव बड़ी मुश्किल में पड़ गया, कौन ठीक है? आखिर गांव के लोग घबड़ा गए उन दोनों का विवाद, चर्चा सुन-सुन कर। फिर गांव के लोगों ने कहाः ऐसा करें, आज आ रही है पूर्णिमा की रात्रि, आप दोनों विवाद करें। और दोनों में जो जीत जाए हम सारे गांव के लोग उसी के साथ हो जाएंगे। हम ज्यादा झंझट नहीं चाहते। हमें अपना काम करने दो, हम दुकान पर बैठे हैं, तुम आकर हमारा सिर खाते हो कि ईश्वर है, कि ईश्वर नहीं है। हम अपना काम कर रहे हैं, हमें अपना काम करने दो, तुम दोनों लड़ लो, जो जीत जाए हम उसी को मान लेंगे।
उस पूर्णिमा की रात उस गांव में विवाद हुआ, और आस्तिक ने गहरी से गहरी दलीलें दीं ईश्वर के होने के लिए, और ईश्वर के न होने को खंडन किया। और नास्तिक ने समझाया कि ईश्वर नहीं है, और ईश्वर के न होने को प्रमाणित किया। दोनों की दलीलें अदभुत थीं, इन दोनों के तर्क अदभुत थे, दोनों... ऐसा लगा कि कौन जीतेगा? दोनों जीतते हुए मालूम पड़े। और मजा यह है कि दोनों जीत गए। सुबह होते-होते आस्तिक नास्तिक हो गया, नास्तिक आस्तिक हो गया। और गांव की मुसीबत बरकरार रही। वह गांव फिर झंझट में पड़ा रहा। इससे क्या फर्क पड़ता है। एक आस्तिक फिर रहा गांव में, एक नास्तिक फिर रहा। और फिर दूसरे दिन से सुबह से उन्होंने समझाना शुरू कर दिया कि ईश्वर नहीं है, ईश्वर है। मैं अविश्वास करने को नहीं कह रहा हूं, मैं कह रहा हूं विचार करने को। अविश्वास भी विचार नहीं है, विश्वास भी विचार नहीं है। और इसलिए विचार करने वाला न विश्वासी होता, न अविश्वासी होता। संदेह का अर्थ अविश्वास नहीं है। संदेह का अर्थ है कि मैं खोजूंगा, पूछूंगा, जानूंगा। अविश्वास का अर्थ है कि मैंने मान लिया कि नहीं है। अविश्वास अंधा है। अविश्वास ईश्वर को खोजने नहीं जाता। वह कहता है, नहीं है ईश्वर। विश्वासी भी खोजने नहीं जाता, वह कहता है कि ईश्वर है। दोनों अपनी जगह बैठ कर घोषणाएं करते रहते हैं, खोजने कोई भी नहीं जाता।
संदेह खोजने जाता है। संदेह कहता हैः मुझे पता नहीं है, और मैं किसी दूसरे को मानने की तैयारी में भी नहीं हूं, मैं खोजूंगा। अगर पता मिल जाएगा तो स्वीकृति होगी, नहीं पता मिलेगा तो अस्वीकार कर दूंगा। लेकिन जब तक मुझे पता नहीं तब तक मैं कैसे स्वीकार करूं, कैसे अस्वीकार करूं? कैसे विश्वास करूं, कैसे अविश्वास करूं?
संदेह का मतलब बहुत भिन्न है। संदेह का मतलब हैः एक ओपन माइंड, एक खुला हुआ चित्त जो खोजने को तैयार है, जिसका कोई पक्ष नहीं है, जो किसी पक्ष को पकड़ता नहीं है, जो निष्पक्ष है। संदेह का अर्थ हैः निष्पक्षता, अनप्रिज्युडिस्ड। संदेह का अर्थ हैः खुला मन। कोई पहले से हमने पकड़ नहीं लिया। हम खोजेंगे, खोजेंगे, खोजेंगे। खोज में जाएंगे। जो होगा, जो दिखाई पड़ेगा, उसे जान लेंगे। जो नहीं होगा, नहीं दिखाई पड़ेगा, वह खो जाएगा।
मैं कह रहा हूं विचार करने को, तो न तो मुझ पर विश्वास कर लेना, न अविश्वास कर लेना। मेरी बात को सुन लेना, निष्पक्ष मन से सोचना, खोजना, इतनी जल्दी भी नहीं है कि आज ही, अभी कोई निर्णय हो जाए। जो जल्दी में हैं बहुत निर्णय की, वे गलत निर्णय ले लेते हैं। क्योंकि जल्दी के कारण हम सोचने के लिए समय नहीं दे पाते। जल्दी कुछ भी नहीं है। जीवन के जो परम सत्य हैं उन्हें बड़े धैर्य से, अत्यंत धैर्य से खोजना पड़ता है। अक्सर यह होता है कि जल्दी वाले कहीं भी नहीं पहुंचते, धीरे-धीरे चलने वाले कहीं पहुंच जाते हैं। विचार बड़ी धीमी, ब.हुत धीमी खोज है।
एक कहानी मुझे याद आती है।
मैंने सुना है कि कोरिया के एक गांव के पास एक नाव में दो भिक्षु पार
कर रहे थे नाव। नदी पार की, एक वृद्ध भिक्षु है, एक जवान भिक्षु है। दोनों के सिर पर ग्रंथों का बड़ा बोझ है। भिक्षुओं के सिर पर होता ही है, साधु- संन्यासियों के सिर पर ग्रंथों का बोझ न होगा तो और क्या होगा? तिजोरी का बोझ हटता है तो किताबों का बोझ सिर पर बैठ जाता है। वे अपना-अपना बोझ लिए हुए हैं। दोनों उतरे हैं, मल्लाह से पूछने लगे हैं, मांझी से कि हम कितनी देर में गांव पहुंच जाएंगे। क्योंकि हमने सुना है कि इस गांव का नियम ऐसा

है कि सूरज ढलते ही गांव का दरवाजा बंद होता है, फिर रात भर हमें जंगल में रहना पड़ेगा। सूरज डूबने के करीब है, सूरज नीचे उतर रहा है। उस मांझी ने अपनी नाव धीरे से बांधते हुए कहा कि धीरे-धीरे जाओ तो पहुंच भी सकते हो, लेकिन जल्दी गए तो पहुंचने का कोई भरोसा नहीं है।
अब ऐसी बात पागलपन की मालूम होती है। उन दोनों भिक्षुओं ने सोचा कौन पागल से हम पूछ रहे हैं, उलटी बात कह रहा है? कह रहा है, धीरे-धीरे जाओ तो पहुंच भी सकते हो, अगर जल्दी गए तो पहुंचने का कोई पक्का भरोसा नहीं है। फिर उन्होंने उससे कुछ भी पूछना उचित न समझा। वे दोनों भागे, क्योंकि कहीं रात न पड़ जाए और दरवाजा बंद न हो जाए। अन्यथा फिर रात, जंगल है, घना जंगल, अंधेरी रात, मुश्किल हो सकती है। वे दोनों भाग रहे हैं, और आखिर जो होना था वही हुआ। उस बूढ़े का पैर एक पत्थर से फिसल गया, वह गिर पड़ा, दोनों टांगें टूट गईं, सारे ग्रंथ के पन्ने बिखर गए।
वह मांझी अपनी नाव बांध कर, अपनी पतवार लेकर धीरे-धीरे आता था। बूढ़े
को पड़े देखा, जवान उसके पैर पर पट्टियां बांध रहा है। वह नाविक आकर खड़ा हो गया और कहने लगा, मैंने कहा था अगर धीरे से जाओगे तो पहुंच भी सकते हो। जल्दी गए, पहुंचने का कोई भरोसा नहीं। अनेक जल्दी जाने वालों को इसी तरह इन्हीं पत्थरों पर गिरते हुए मैं देख चुका हूं। लेकिन तुमने मेरी बात नहीं मानी, तुम समझे कि मैं कोई पागल हूं। तुमने मेरी बात विचारी भी नहीं, तुमने मेरी बात पर ध्यान भी नहीं दिया। तुमने समझा कि इससे हमने पूछ कर ही गलती की है। अब तुम मुश्किल में पड़ गए, अब पहुंचना बहुत मुश्किल है। अच्छा मैं चलता हूं, नमस्कार। अभी समय है और मैं धीरे-धीरे जा रहा हूं, पहुंच जाऊंगा।
जीवन के जो परम सत्य हैं वहां अधैर्य से काम नहीं चलता है। असल में अधैर्य के कारण ही हम विश्वास कर लेते हैं या अविश्वास करते हैं। अधैर्य के कारण, वह जो इंपेशेंस है, ऐसा लगता है--अभी, इसी वक्त। तो अभी और इसी वक्त विचार तो नहीं हो सकता, अंधापन हो सकता है--किसी को भी मान लो। विचार करना है तो अत्यंत धैर्य चाहिए। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जितना धैर्य हो उतनी जल्दी मनुष्य निर्णय पर पहुंच जाता है, और जितना अधैर्य हो उतना ही पहुंचना मुश्किल हो जाता है--क्यों? क्योंकि धैर्य की जो क्षमता है, जो शांति है, वह विचार करने के लिए सहारा बनती है। अत्यंत धीरज से भरा हुआ चित्त ठीक से देख पाता है, सोच पाता है, समझ पाता है।
लेकिन हम, हम प्रत्येक चीज में भागे हुए हैं, दौड़े हुए हैं। और जीवन के
जो परम प्रश्न हैं, जो चरम सवाल हैं, जो अंतिम अल्टीमेट क्वेश्चंस हैं-- उनके संबंध में तो हम इतनी जल्दी करते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं है। बच्चा पैदा नहीं हुआ और हमने सिखाना शुरू किया कि ईश्वर है, मोक्ष है। क्या पागलपन कर रहे हैं? बच्चे को श्वास तो लेने दें। उसकी बुद्धि को थोड़ा विकसित तो होने दें। यह सब आप क्या उसके दिमाग में भर रहे हैं? इतनी जल्दी क्या है? उसके बिना सोचे-विचारे आप उसके दिमाग में भर देंगे। जिंदगी भर के लिए वह बिना सोचा-विचारा रह जाएगा। जीवन भर इन्हीं बातों को दोहराता रहेगा जो आपने उसके मस्तिष्क में डाल दी हैं। और मस्तिष्क में बातों को डालने की एक अलग कला है। उसका ज्ञान से कोई भी संबंध नहीं है। बल्कि सच तो यह है कि उसका शोषण से, एक्सप्लॉइटेशन से संबंध है।
आप जाते हैं रास्ते पर, और रास्ते पर लिखा हुआ हैः पनामा सिगरेट पीना- पिलाना उम्दा बात है। आपने पढ़ लिया, आप आगे बढ़े। फिर दूसरे रास्ते पर वही लिखा है कि पनामा सिगरेट पीना-पिलाना उम्दा बात है, आपने वह भी पढ़ लिया। आपको पता नहीं कि पढ़-पढ़ कर पनामा सिगरेट आपके भीतर प्रवेश कर रही है। फिल्म देखने गए हैं, वहां भी पनामा सिगरेट। रेडियो खोला, वहां भी पनामा सिगरेट। और रात में निकले हैं तो पहले तो बिजली के बल्ब थे जो स्थिर जलते रहते थे--पनामा सिगरेट--अब वे जलते-बुझते रहते हैं। अब समझदारों ने समझाया कि जितनी बार जले-बुझे, उतनी बार आदमी को पढ़ना पड़ेगा। पनामा सिगरेट फिर बुझ गया, फिर जला पनामा सिगरेट। फिर आपको पढ़ना पड़ेगा, आप उसके नीचे से निकल रहे हैं। वह जितनी देर आप निकल रहे हैं, जलेगा-बुझेगा, उतनी बार आपको पढ़ना पड़ेगा।

अगर वह एक साथ ही जलता रहे तो एक ही बार पढ़ने से छुटकारा हो जाएगा। लेकिन रिपिटेशन से दिमाग में बात डाली जाती है। तो सब तरफ से, रेडियो खोलो पनामा सिगरेट, फिल्म देखो पनामा सिगरेट, अखबार खोलो पनामा सिगरेट, जो कुछ भी करो पनामा सिगरेट--वह आपके भीतर घुसती चली जा रही है। आपको कोई समझा नहीं रहा है, सिर्फ आपको परसुएड किया जा रहा है। आपको फुसलाया जा रहा है कि पनामा सिगरेट अच्छी सिगरेट है। आप बाजार में गए, सिगरेट की दुकान पर खड़े हुए हैं, हजारों सिगरेट रखी हुई हैं, सिगरेट वाला पूछता है, कौन सी सिगरेट? आप कहते हैं, पनामा दे दो। आप सोचते हैं, हम सोच कर कह रहे हैं, सोचने का इससे कोई संबंध नहीं है। आपकी खोपड़ी में डाल दी गई है यह बात। आप मशीन की तरह कह रहे हैं, पनामा सिगरेट। यह बहुत बार आपके दिमाग में डाल दिया अब आपकी जबान से निकल रहा है, पनामा सिगरेट।
यह पनामा सिगरेट जिस तरह निकल रही है, उसी तरह और चीजें भी निकल रही हैं। ईश्वर भी, आत्मा भी, मोक्ष भी; जैन धर्म भी, हिंदू धर्म भी, मुसलमान धर्म भी। बचपन से एक बच्चे को पढ़ाया जा रहा है कि महावीर तीर्थंकर थे, वही पनामा सिगरेट वाली कला है। महावीर तीर्थंकर हैं, महावीर तीर्थंकर हैं, हे जैनेंद्र देव, महावीर तीर्थंकर हैं। किसी को पढ़ाया जा रहा है, राम भगवान हैं; किसी को पढ़ाया जा रहा है, मोहम्मद पैगंबर हैं। उस बच्चे की खोपड़ी में डाल रहे हो, डाल रहे हो, डाल रहे हो। जवान होते-होते उससे पूछो, मोहम्मद कौन हैं? वह कहेगाः सीधे से बोलो, कहो हजरत मोहम्मद। महावीर कौन है? वह कहेगाः पहले लगाओ भगवान, भगवान महावीर। ऐसा महावीर नहीं कहना चाहिए। यह सोच कर कह रहा है?
वही पनामा सिगरेट निकल रही है। जो डाला गया है, वही निकल रहा है। इसको सोच-विचार पैदा हुआ है कुछ? आपसे कोई पूछता है, आप कौन? आप कहते हैं, मैं हिंदू हूं। आप सोच-विचार कर हिंदू हुए? आपने कभी यह निर्णय लिया है कि मैं हिंदू हो जाऊं? यह कभी आपका डिसीजन रहा है? यह कभी आपने तय किया है कि मैं हिंदू होता हूं? यह आपने कभी तय नहीं किया। यह आपको पढ़ाया गया है, सिखाया गया है, यह आपके खून में डाल दिया गया है। यह आपकी हड्डी-हड्डी में पहुंच गया है। अब आप कहते हैं, मैं हिंदू हूं। इससे ज्यादा अबुद्धि की और क्या बात हो सकती है कि आप कहते हैंः मैं मुसलमान हूं, मैं जैन हूं, मैं सिक्ख हूं--आपने निर्णय लिया है कभी?
महावीर के पास जो पहले आदमी इकट्ठे हुए होंगे, उनका तो निर्णय रहा होगा जैन होने का। लेकिन उनके बाद के लोगों का कोई निर्णय नहीं, वे सब अंधों की तरह पीछे जा रहे हैं। मोहम्मद के पास जो पहले लोग इकट्ठे हुए होंगे उन्होंने निर्णय लिया होगा, उनका डिसीजन रहा होगा कि हम सोच-विचार कर इस बात के पास जाते हैं। लेकिन उनके बच्चे? लेकिन उनके बच्चों के सिर में थोपा जा रहा है।
हम विचार कर ही नहीं रहे हैं। हमें विचार करने का मौका, अवसर ही नहीं है। और धीरज भी नहीं है कि एक बाप ठहरे कि बच्चा जवान हो जाए, और फिर सोचे, खोजे। और जो ठीक समझे वह हो जाए। लेकिन बाप डरा हुआ है। बाप को अच्छी तरह पता है कि अगर इसने सोच-विचार किया तो हिंदू-मुसलमान होगा ही नहीं, आदमी हो जाएगा। और आदमी कोई नहीं चाहता, कि कोई हो जाए। हिंदू बनाना चाहता है, मुसलमान बनाना चाहता है, ईसाई; आदमी? आदमी को कोई पसंद नहीं करता।
अगर निपट आदमी हैं आप, तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। अगर आप एक धर्मशाला में जाएं और वे पूछें कि आप कौन हैं? जैन हैं, हिंदू हैं? और आप कहें, मैं सिर्फ आदमी हूं। तो वे कहेंगे, यह धर्मशाला जैनियों के लिए है, आप कहीं आदमियों की धर्मशाला में जाइए। और आदमियों के लिए कोई धर्मशाला है नहीं। है कोई धर्मशाला जिसमें लिखा हो कि यहां आदमी ठहर सकते हैं? ऐसी कोई धर्मशाला नहीं है। आप मंदिर में जाइए, वे पूछेंगे कि कौन, ब्राह्मण हो कि शूद्र हो? और आप कहें कि मैं सिर्फ आदमी हूं। वे कहेंगे, कहीं और जाओ। आदमियों का मंदिर अभी तक बना ही नहीं है। और आदमी होना हमारी असलियत है। और जो असलियत नहीं है वह हमें सिखाया गया है। और जो हमें सिखाया गया है वही हम भुगत रहे हैं। फिर कैसे हम विचारपूर्ण हो सकेंगे?

इसलिए विचारपूर्ण आदमी यह देखता है कि मैं सिखाई हुई बातें तो नहीं दोहरा रहा हूं? मैं जबरदस्ती प्रचारित, प्रोपेगेंडिड बातें को नहीं दोहरा रहा हूं? मेरे मस्तिष्क में कहीं जो सिखा दिया गया है, और डाल दिया गया है, और वही तो नहीं कहे चला जा रहा हूं? और तब उसे स्पष्ट दिखाईर् पड़ेगा कि अधिकतम बातें तो हम चुपचाप अंधों की तरह दोहरा रहे हैं। ऐसी बातों को दोहराने वाले आदमी की आत्मा कभी भी पैदा नहीं होती।
इसलिए मैं कहता हूंः विश्वास से मुक्त होना, अविश्वास से मुक्त होना। असल में मेरा मतलब हैः अंधेपन से मुक्त होना, और विचार की आंख को पैदा करना।
विचार के अतिरिक्त और कोई आंख नहीं है। विचार के अतिरिक्त मनुष्य के पास और कोई क्षमता नहीं है। विचार के अतिरिक्त मनुष्य के पास और कोई शक्ति नहीं है। और उसी विचार को सब तरफ से जकड़ना और कैद में डाल दिया गया है, सब तरफ से जंजीरें पहना दी गई हैं। लेकिन हमें खयाल भी नहीं आता, हमें पता भी नहीं चलता। हम जो कह रहे हैं, वह सीखा हुआ है; जो पूछ रहे हैं, वह सीखा हुआ है; जो मान रहे हैं, वह सीखा हुआ है। सब सीखा हुआ है, हमारे पास जाना हुआ कुछ भी नहीं है।
हम कैसे आदमी हैं? और इस सीखे हुए पर हम लड़ेंगे। अभी खबर उड़ जाए कि हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया। और बस, एक आदमी दूसरे की छाती में छुरा भोंक रहा है। अब जरा गौर से देखो कि कौन किसकी छाती में छुरा भोंक रहा है? जिसके दिमाग में बचपन से सिखाया गया है कि पनामा सिगरेट अच्छी है, वह उसकी छाती में छुरा भोंक रहा है जिसको सिखाया गया है कि बर्गले सिगरेट अच्छी है। पनामा सिगरेट बर्गले सिगरेट में छुरा भोंक रही है। और कुछ मामला नहीं है। कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है? लेकिन जिसे सिखाया गया कि तू मुसलमान है, वह हिंदू की छाती में छुरा भोंक रहा है; जिसे सिखाया गया है कि वह हिंदू है... । थोड़ी देर को सोचें, इन दोनों को न सिखाया गया होता कि तुम हिंदू और मुसलमान हो, और हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाता, तो क्या एक-दूसरे की छाती में ये छुरा भोंकते? यह एक विश्वास दूसरे विश्वास की छाती में छुरा भोंक रहा है।
एक आदमी दूसरे आदमी की छाती में छुरा नहीं भोंक सकता। एक अंधापन दूसरे अंधेपन की छाती में छुरा भोंकता है। अभी कल तक, उन्नीस सौ सैंतालीस तक पाकिस्तान हमारी मातृभूमि थी--अब? अब हमारी दुश्मन भूमि है। अब हमारी प्रार्थनाएं यह हैं कि पाकिस्तान खत्म हो जाए। और पाकिस्तान के लोगों की प्रार्थनाएं यह हैं कि हिंदुस्तान खत्म हो जाए। और कल तक यह जमीन एक थी। आज क्या हो गया?
अभी कल ही मैं कह रहा था, एक छोटी सी एक कहानी किसी ने लिखी है। जब हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा होने लगा, तो सीमा-रेखा पर एक पागलखाना था। उस पागलखाने के पागलों से पूछा गया कि तुम हिंदुस्तान में जाना चाहते हो कि पाकिस्तान में? पागलों ने कहाः हम कहीं नहीं जाना चाहते, हम यहीं रहना चाहते हैं। हमसे कम पागल रहे होंगे वे। वे पागल बोले, हमें कहीं जाना नहीं। हम क्यों जाएं हिंदुस्तान में? क्यों जाएं पाकिस्तान में? हम तो यहीं रहना चाहते हैं, जहां रहते हैं। लेकिन अधिकारियों ने कहाः नहीं, ऐसे नहीं चलेगा, अब तो जाना ही पड़ेगा। कहां जाना है तुम्हें? पागलों ने कहाः हम जहां रहते आए हैं, हम मजे में हैं। हमें कहीं भी नहीं जाना है।
लेकिन जब पूरा मुल्क, चालीस करोड़ पागल हो गया होगा तो पागलों की कौन सुने?
अधिकारियों ने कहा कि नहीं, जाना पड़ेगा। तुम तय करो कि तुम्हारा पागलखाना कहां रहेगा, हिंदुस्तान में कि पाकिस्तान में? पागल कुछ भी तय न कर पाए। क्योंकि पागल आपस में बहुत सोचे होंगे कि... कहा यह मामला क्या है? हम जहां रहते हैं वहीं ठीक हैं, हमें कहीं जाने की जरूरत क्या है? फिर पागलों को क्या पता कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है? अगर उनमें बुद्धि होती तो उनको पता होता। बुद्धिमान पागलों से भी ज्यादा पागल मालूम होते हैं। वे पागल सोचने लगे कि कौन हिंदू है? कौन मुसलमान है? यह मामला क्या है?

पागलों को पता नहीं कि एक हिंदू है, एक मुसलमान है। पागल सिर्फ पागल है। उनसे बहुत कहा गया कि तुममें जो मुसलमान हैं वे पाकिस्तान चले जाएं, तुममें जो हिंदू हैं वे हिंदुस्तान चले जाएं। उन्होंने कहा कि हम तो सिर्फ पागल हैं। कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, हमें कुछ पता नहीं। आखिर यही निर्णय हुआ कि पागलखाने में बीच में रेखा खींच दी जाए, आधा-आधा पागलखाना बांट दिया जाए--जो जहां चला जाए। यही तो रास्ता है, फिर और कोई रास्ता नहीं है। अगर पागल लड़ने लगें तो फिर रास्ता एक है कि बीच से रेखा खींच दो, और पागलों को बांट दो। आधे-आधे पागल बंट जाएं।
आधा-आधा पागलखाना बांट दिया गया। आधा पागलखाना पाकिस्तान हो गया, आधा पागलखाना हिंदुस्तान हो गया। लेकिन वे पागल सीमा-रेखा पर खड़े होकर बात करने लगे एक-दूसरे से कि बड़ी अदभुत बात है, हम पाकिस्तान में आ गए, तुम हिंदुस्तान में चले गए। और कोई कहीं नहीं गया, सब वहीं के वहीं हैं। और यह हो कैसे गया? यह मिरेकल, यह चमत्कार हो कैसे गया? यह हमको समझाया जाता है कि हम पाकिस्तान में चले गए, तुम हिंदुस्तान में चले गए हो। और जहां के तहां हैं हम। मकान भी हमारा वही है, हम भी वही हैं।
उन पागलों को क्या पता कि आदमी बहुत पागल है। और पागलखानों के बाहर वे पागल हैं, वे बहुत खतरनाक पागल हैं। और उन... अब पाकिस्तान है, अब हिंदुस्तान है, अब हिंदुस्तान पाकिस्तान की छाती में छुरा भोंकता रहे, पाकिस्तान हिंदुस्तान की छाती में छुरा भोंकता रहे, और कोई पूछे कि जमीन बंटी हुई है कहीं?--कि हमें सिखाया जा रहा है। हमें सिखाया जा रहा है, हम वही सीख रहे हैं।
आदमी जब तक विश्वास करता रहेगा दुनिया से युद्ध बंद नहीं होंगे। आदमी
जब तक विश्वास करता रहेगा तब तक दुनिया से हिंसा बंद नहीं होगी। आदमी विचार करेगा तो पाकिस्तान इसी वक्त मिट जाएगा, हिंदुस्तान मिट जाएगा, चीन मिट जाएगा। क्योंकि विचार किन्हीं सीमाओं को नहीं मानेगा। विचार सत्य को देखेगा। हिंदू मिट जाएगा, मुसलमान मिट जाएगा, आदमियत रह जाएगी। इस्लाम चला जाएगा, जैन चला जाएगा, बौद्ध चला जाएगा--धर्म रह जाएगा। क्योंकि विचार में तो वही बचेगा जो सत्य है, शेष सब खो जाता है।
अगर एक विचारपूर्ण दुनिया पैदा की जा सके, तो न तो उसमें राष्ट्र होंगे, न तथाकथित धर्म होंगे, न जातियां होंगी, न ब्राह्मण होंगे, न शूद्र होंगे। यह सब मस्तिष्क, मनुष्य के न्यूरोटिक, मनुष्य के पागल होने के लक्षण हैं। यह अदभुत बात है। लेकिन बड़े बुद्धिमान भी इन्हीं बातों की ताकीद किए चले जाते हैं कि फलां आदमी शूद्र है, फलां आदमी ब्राह्मण है। इसलिए मैं कहता हूं, विश्वास से मुक्त हों, ताकि एक अच्छी मनुष्यता का, और एक अच्छे जगत का निर्माण हो सके। इसलिए विश्वास से मुक्ति को मैंने जीवन-क्रांति का दूसरा सूत्र कहा है।
कुछ और प्रश्न रह गए हैं जिन पर कि बात नहीं हो सकी, वे सभी प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। लेकिन समय की सीमा है और जिनके प्रश्न रह गए हों और उन्हें लगे कि उनका उत्तर जरूरी है तो मुझे लिख कर पूछ ले सकते हैं। सांझ को हम तीसरे अंतिम सूत्र पर बात करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

प्रेम गंगा
चौथा प्रवचन

मोक्ष से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!
जीवन-क्रांति के सूत्रों में दो सूत्रों पर हमने विचार किया। पहले दिन अतीत से मुक्तिः वह जो बीत गया है, वह मन से भी बीत जाए; वह जो अस्तित्व में नहीं बचा है, वह हमारे विचारों में भी न रहे। वह जा चुका है, वह चला ही जाए। हमारे ऊपर उसका बंधन न हो, हम उससे मुक्त हो सकें। जैसे कोई सांप केंचुल को छोड़ देता है और आगे निकल जाता है, केंचुल पीछे छूट जाती है। कल तक वह उसके शरीर का अंग थी, आज अतीत हो गई, मृत हो गई, अलग हो गई। वह छोड़ कर उसे बाहर हो गया। जो समाज अपने अतीत को केंचुली की भांति छोड़ कर आगे बढ़ जाता है, वह विकासमान है। जो व्यक्ति भी अतीत से निरंतर मुक्त होता रहता है, वह सदा सत्य के और जीवन के निकट पहुंचता चला जाता है। इसलिए पहले सूत्र में अतीत से मुक्ति की बात समझी।
दूसरा सूत्र थाः विश्वास से मुक्ति। जो विश्वास से बंधे हैं, वे कभी
भी स्वतंत्र चेतना को जन्म नहीं दे पाते। विश्वास से बंधा होना अंधा होना है। अपने हाथ से अपनी आंखें बंद रखनी हैं तो आदमी विश्वास के जाल में पड़ा रह सकता है। आंखें खोलनी हों तो विचार करना पड़ेगा। और विचार श्रमपूर्ण है, क्योंकि विचार स्वयं करना है। विश्वास आलस्य है, क्योंकि विश्वास दूसरे से मिल जाता है। और जो दूसरे पर निर्भर है वह स्वयं कभी भी नहीं हो पाता। और जो स्वयं नहीं हो पाता है--उसकी न कोई प्रतिभा है, न कोई आत्मा--चाहे व्यक्ति हो, चाहे समाज, चाहे राष्ट्र। विचार ही आत्मा को जन्म देता है।
दूसरे सूत्र में हमने विश्वास से मुक्ति के संबंध में समझी।
आज तीसरा सूत्र--पहला थाः अतीत से मुक्ति। दूसराः विश्वास से मुक्ति।
और आज तीसराः मोक्ष से मुक्ति।
एक छोटी सी कहानी से शुरू करना चाहूंगा।
एक रूसी लोक-कथा मैंने सुनी है। सुबह है, सूरज निकला है और एक कवि एकांत में सरोवर के तट पर एक लंबे वृक्ष के नीचे बैठ कर कविताएं पढ़ रहा है।
आस-पास कोई भी नहीं है, वृक्ष पर एक कौआ बैठा हुआ है। कवि पहली कविता पढ़ता है, जिसमें वह कहता हैः सारी दुनिया की संपत्ति का मैं मालिक हो गया हूं, सोलोमन का खजाना मुझे मिल गया है, मैं कुबेर हो गया हूं। अब कुछ भी ऐसा नहीं जो पाने को बचा हो, सब मैंने पा लिया है। उसकी कविता का यह अर्थ था। फिर आदत के अनुसार, जैसा (.4 : 20--अस्पष्ट) कवि कविता पढ़े, फिर वह देखता है कि कोई दाद दे, वह चारों तरफ देखता है, लेकिन वहां कोई भी नहीं है। सिर्फ ऊपर बैठा हुआ कौआ जोर से कांव-कांव करता है, और कहता हैः सो वॉट? इससे क्या हुआ? तो कवि बहुत हैरान हुआ। कवि कह रहा हैः मैं कुबेर हो गया, सारी संपत्ति मेरी हो गई, और कौआ कहता हैः सो वॉट? क्या हुआ इससे? क्रोध में कवि ने ऊपर देखा और कहाः नासमझ कौवे, तू क्या समझेगा? उस कौवे ने कहाः ठीक कहते हो तुम, धन की बात कोई भी कौआ नहीं समझेगा, धन की बात सिवाय आदमी के और कोई भी नहीं समझता। लेकिन तुम समझते हो कि हम जो धन की बात नहीं समझते, नासमझ हैं। और हम कौवे, और ये वृक्ष, और ये पौधे, और ये सारे पशु-पक्षी यह समझते हैं कि धन की बात समझने के साथ ही आदमी नासमझ हो गया है।
कवि ने यह सोच कर कि यह कौआ नहीं समझ सकेगा, दूसरी कविता पढ़ी। और उस कविता में वह कहता हैः सारी पृथ्वी का मैं राजा हो गया, चक्रवर्ती सम्राट हो गया, स्वर्ण-सिंहासनों पर विराजमान हूं, सब कुछ मेरा है, जहां तक दृष्टि जाती, मेरा है। वह कौवे की तरफ फिर देखता है, और वह कौआ न मालूम कैसा पागल है कि वह फिर कहता हैः सो वॉट? इससे क्या हुआ? बड़े से बड़े सिंहासनों पर बैठ जाओ तो क्या हो तुम? हम कौवे उन सिंहासनों पर बैठना बिल्कुल पसंद ही नहीं कर सकते। कवि ने सोचा कि मालूम होता है यह कौआ न तो धन की बात समझता है, न यश की बात समझता है, कोई संन्यासी कौआ तो नहीं है? तो शायद संन्यास की बात समझ सके।

वह तीसरी कविता पढ़ता है और कहता हैः मैंने सब छोड़ दिया है और परमात्मा
को पा लिया है। मैं जीवन से हट आया और मैंने मोक्ष उपलब्ध कर लिया है। मैं मोक्ष का आनंद भोग रहा हूं, मैं मोक्ष में हूं। वह कौआ लेकिन बड़ा पागल है, वह फिर कहता हैः सो वॉट? इससे क्या होगा? कवि तो क्रोध से भर गया और कहने लगा कि हर चीज में कहते होः सो वॉट। न धन का कोई मतलब, न यश का, तो मोक्ष का तो मतलब होना चाहिए। क्योंकि मैंने देखा है, जो धन और यश को छोड़ते हैं वे मोक्ष की तरफ दौड़ना शुरू कर देते हैं। बस तीन तो बातें हुईं।
तो वह कौआ कहने लगा, पागल हो तुम, या तो धन की तरफ दौड़ोगे, या यश की तरफ दौड़ोगे। और अगर छूटोगे कुएं से तो खाई में गिरोगे, तो मोक्ष की तरफ दौड़ोगे। लेकिन जीवन की तरफ तुम्हारी यात्रा कभी भी नहीं है। और हम जीते हैं। हम पौधे, हम पक्षी, हम सब--हम जीते हैं और जीवन का आनंद लूटते हैं। जीवन के अतिरिक्त न कोई धन है, जीवन के अतिरिक्त न कोई यश है, और जीवन के अतिरिक्त न कोई मोक्ष है।
यह कहानी मैंने सुनी तो मैं बहुत हैरान हुआ। यह कहानी रूस में घटी, यह हैरानी की बात है! यह भारत में घटनी चाहिए थी। भारत हजारों वर्षों से मोक्ष के पीछे भागता रहा है, और मोक्ष के पीछे भागने की इस दौड़ में जीवन सब तरफ से उपेक्षित हुआ है। सब तरफ से नष्ट और विकृत हुआ है। मोक्ष पर आंखें अटक गई हैं--और जीवन? जीवन उपेक्षित पड़ा है। और मोक्ष? और मोक्ष है मृत्यु के बाद, और जीना है अभी, और यहीं। और हमारी दृष्टि है मृत्यु के बाद।
तो जीवन को कौन बनाएगा सुंदर? जीवन को कौन बनाएगा सत्य? जीवन को कौन बनाएगा शिव? जीवन को कौन श्रेष्ठता देगा? जीवन को कौन संवारेगा? तो जीवन पड़ा है उजड़ा हुआ और हम, हम मोक्ष की तरफ आंखें लगाए हुए हैं। जीवन के सत्य की खोज और जीवन के परिपूर्ण अनुभव के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं है। और हम एक ऐसी मुक्ति खोज रहे हैं जो जीवन से विरोधी है। तो जीवन-विरोधी मोक्ष ने भारत की आत्मा की हत्या कर दी है। हमने जो मोक्ष की धारणा दी है उसने हमें सुंदर और श्रेष्ठतर जीवन नहीं दिया है। बल्कि जीवन जैसा था--दुखद, पीड़ित, गंदा, कुरूप--वह उसने स्वीकृत कर लेने का अनुभव दिया है।... (रिकार्डिंग रिक्त 9 : 50) इससे तो छुटकारा पा लें न।
तो कौन करे चिंता, क्यों करें चिंता, क्यों बदलें इस जीवन को, क्यों फूल खिलाएं, क्यों कांटों से डरें? चार दिन की बात है, किसी तरह गुजार लें। जैसे कोई आदमी रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम के साथ व्यवहार करता है, वैसा भारत जीवन के साथ कर रहा है। वेटिंग रूम में देखते हैं आप, जो भी आदमी आकर बैठता है, वहीं पान थूकता है, मूंगफली के छिलके फेंकता है, वहीं गंदगी करता है और वहीं सिगरेट जलाता है और वहीं माचिस फेंकता है। और उससे कहें कि यह क्या कर रहे हैं? वह कहेगा, यह कोई हमारे बाप का घर थोड़े ही है, यह तो विश्रामगृह है, अभी दो क्षण बाद हम यहां से चले जाएंगे, हमें क्या प्रयोजन? उसके पहले बैठने वाले लोगों ने भी यही व्यवहार किया है उस विश्रामगृह में। उसके बाद आने वाले भी यही व्यवहार करेंगे। वह विश्रामगृह एक गंदगी का घर हो जाएगा। और प्रत्येक यह मानता हैः कोई हमें यहां जीवन भर रहना है, थोड़ी देर बैठना है और हमारी ट्रेन आएगी और हम चले जाएंगे।
भारत जीवन के साथ रेलवे-स्टेशन के विश्रामालय सा व्यवहार करता है। इधर साधु-संत समझा रहे हैं भारत को कि क्या रखा है, दो दिन की बात है, अपने- अपने समय की प्रतीक्षा है, सबकी ट्रेन आएगी और सब चले जाएंगे। यहां की चिंता में क्यों पड़े हो? स्वाभाविक है कि जीवन के प्रति एक उपेक्षा पैदा हो गई है। और उस उपेक्षा का परिणाम भोगना पड़ेगा। हम भोग रहे हैं। हजारों साल से भोग रहे हैं।
उपेक्षा ने जीवन के सारे रस-स्रोत सुखा डाले हैं। जीवन के पौधे पर हमने पानी नहीं दिया है। फिर जीवन के पौधे पर फूल आने बंद हो गए हैं। फिर जीवन का पौधा सूखता चला गया। अब जीवन के पौधे पर सूखी शाखाएं हैं, जिनमें न फूल दिखाई पड़ते हैं, न पत्ते दिखाई पड़ते हैं। और हम सब आकाश की तरफ आंखें लगाए हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं, कब मरें।

मैं अभी भावनगर था। चौदह-पंद्रह साल की लड़की ने आकर मुझे कहा कि मुझे आपसे अलग से मिलना है। क्या काम है तुझे? वह कहने लगी कि मुझे पूछना है कि आवागमन से छुटकारा कैसे मिले? जिंदगी से छुटकारा कैसे मिले? चौदह-पंद्रह साल के बच्चे अगर यह पूछने लगेंगे, जीवन से छुटकारा कैसे मिले? तो कलियां यह पूछने लगीं फूल होने के पहले कि धूल में मिलने का रास्ता क्या है? पक्षी पूछने लगे उड़ने के पहले कि मरने का मार्ग क्या है? जीवन को जानने के पहले अंकुर कहने लगे कि मुझे कुम्हलाने का रास्ता बता दो, मुरझाने का। सारा जीवन, सारे बीज विषाक्त हो गए हैं। एक बात से कि हमने जीवन को सुंदर बनाने की कला नहीं बनाया धर्म; हमने जीवन से भागने की, जीवन से छूटने की, जीवन से दूर निकल जाने की विधि समझाया। धर्म को हमने पलायन बनाया है, एस्केप। धर्म को हमने आर्ट ऑफ लिविंग, जीवन की कला नहीं बनाया है।
और भारत को अगर थोड़ी भी क्रांति लानी हो तो उसे अपने समस्त धर्म-चिंतन को, अपने दर्शन को, अपने जीवन की पद्धति को आमूल बदल देना होगा। मोक्ष को केंद्र मानना नहीं है, केंद्र मानना है जीवन को--जो है, अभी और यहां। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि इस जीवन के बाद कोई जीवन नहीं है, इसका यह अर्थ नहीं है कि मृत्यु पर सब कुछ समाप्त हो जाता है--यह मैं कह रहा हूं। इसका सिर्फ यह अर्थ है कि जो इस जीवन को ही सुंंदर नहीं बना पाते हैं, जीवन के बाद कोई जीवन हो तो वह सुंदर नहीं हो सकता।
इस जीवन के सौंदर्य से ही उस जीवन के सौंदर्य के भवन की ईंटें रखी जाएंगी। अगर कहीं कोई मोक्ष है तो जो इस जीवन में ही आनंद को अनुभव नहीं कर रहा है, वह उस मोक्ष में भी आनंद को अनुभव नहीं कर सकता। जिसने इस जीवन में आनंद को जाना है, वह उस जीवन में भी आंनद के बीज बो रहा है। आखिर मैं ही तो रहूंगा मोक्ष में, मर कर भी मैं ही तो रहूंगा। मैं जो अभी हूं, मैं ही कल भी रहूंगा। और अगर अभी मैं आनंदित नहीं हूं, अगर अभी मैं रसयुक्त नहीं हूं, अगर अभी मैं शांत नहीं हूं, अगर अभी मेरे जीवन में वीणा नहीं बज रही है, तो सिर्फ मरने से सब बदल जाएगा? कांटे की जगह फूल हो जाएंगे, दुख की जगह आनंद हो जाएगा, उदासी की जगह तारे खिल जाएंगे--खुशी के, सिर्फ मरने से! मरने से यह सब कैसे हो सकता है? जब जीने से ही यह नहीं हो सका, तो मरने से कैसे हो सकता है? जब सारी शक्ति थी जीवन की तब हम नहीं आनंदित होकर ( अस्पष्ट 14 : 57... ) सके, तो मरने से क्या हो जाएगा? यह झूठी आशा है। और इस झूठी आशा के कारण जो हम कर सकते थे वह नहीं कर पाए और जो हम कर ही नहीं सकते उसके तो करने का कोई सवाल नहीं है।
अभी इस क्षण जो जीवन मेरे पास है, इस जीवन को अधिकतम तेजस्वी, अधिकतम प्रफुल्लित, अधिकतम आनंदित कैसे बनाऊं? यह है सवाल। इसी जीवन से कल का क्षण भी निकलेगा, परसों भी निकलेगा। इसी जीवन से मृत्यु के बाद के दिन भी निकलेंगे, इसी जीवन से अनंत जीवन निकलेगा--लेकिन निकलेगा इस जीवन से जो अभी इस क्षण मेरे पास है। यह क्षण अगर व्यर्थ जाता है तो आगे आने वाले क्षणों के भी व्यर्थ जाने की संभावना बढ़ती है, कम नहीं होती है।
लेकिन यह देश, यह देश ऐसा मान कर चल रहा हैः यह जीवन तो व्यर्थ है, कोई
और जीवन है सार्थक उसे खोजना है। और उसकी खोज का रास्ता क्या है? उसकी खोज का रास्ता है इस जीवन की जड़ें काटो, इस जीवन से दूर हटो, इस जीवन से भागो, इस जीवन को बुरा समझो, इस जीवन की निंदा करो, इस जीवन से दुश्मनी करो, इस जीवन के साथ मित्रता तोड़ो--यह जीवन ठीक नहीं है। असली जीवन कहीं और है, यह जीवन झूठा है, इससे हटना है और मुक्त होना है।
यह गलत बात है, यह बुनियादी रूप से गलत बात है। दो तरह के जीवन नहीं हैं। यही जीवन, इसी जीवन का फैलाव आगे भी। जो जड़ें वृक्ष की नीचे पृथ्वी में छिपी हैं, उन्हीं जड़ों के हाथ शाखाओं से आकाश में फैले हुए हैं। जो जड़ें दूर जमीन में छिपी हैं, जो दिखाई भी नहीं पड़ती हैं--अंधेरे में हैं, उनका ही एक हिस्सा वृक्ष की कली ऊपर आकर फूल बनता है, उसी जड़ का एक हिस्सा, जड़ अलग नहीं है। पृथ्वी के नीचे जो छिपा है वह अलग नहीं है, पृथ्वी के ऊपर जो है वह अलग नहीं है। वह सब संयुक्त है, वह एक का ही हिस्सा है।
जीवन एक अनंत सातत्य है। मैं जो कल था, उससे ही मेरा आज जुड़ा है। मैं
जो आज हूं, उससे ही मेरा कल जुड़ा होगा। जो मेरा पिछला जीवन था, उससे मेरा यह

जीवन जुड़ा है। जो मेरा आगे का जीवन होगा, वह भी इसी जीवन से जुड़ा होगा। मोक्ष इस जीवन से दूर और उलटा और भिन्न कहीं नहीं हो सकता। वह इसी जीवन की अंतिम कंटीन्युटी है। वह इसी जीवन की अंतिम ताकत। इस जीवन से उलटा वह नहीं, इस जीवन से विपरीत वह नहीं। इस जीवन की हत्या करके उसे नहीं पाना है। इस जीवन को संवार कर, सुंदर बना कर, इस जीवन को श्रेष्ठ और (17: 43 अस्पष्ट... ) करके ही उसे पाया जा सकता है।
भारत की प्रतिभा को चोट पहुंचाने वाली बड़ी से बड़ी बात, सबसे बड़ी बात, सबसे संघातक बात यही रही है कि हमने इस जीवन के प्रति निंदा का एक दृष्टिकोण अंगीकार कर लिया है। जिसे देखो वही जीवन के विपरीत और विरोध में है--जिसे देखो वही। हम इस जीवन के साथ वैसा ही व्यवहार कर रहे हैं-- जैसा सुना होगा। औरंगजेब ने अपने समय में राजधानी में खबर कर दी कि संगीत, अब राजधानी में मरा हुआ समझ लिया जाए। कोई वीणा नहीं बजेगी और कोई गीत नहीं गाया जाएगा। संगीतज्ञ तो हैरान हो गए। सारे देश के श्रेष्ठतम संगीतज्ञ राजधानी में उपस्थित थे। उन्होंने विरोध के स्वर में प्रत्यक्ष की तरह सुबह जनाजा निकाला, एक अरथी निकाली। सारे संगीतज्ञ रोते-पीटते हुए अरथी के पीछे जा रहे हैं। राजमहल के करीब से निकले, औरंगजेब अपने मकान पर खड़ा है, उसने पूछाः कौन मर गया? तो उन रोते हुए संगीतज्ञों ने कहा कि संगीत की मृत्यु हो गई है। औरंगजेब ने उस खिड़की पर से कहाः ठीक हुआ, अच्छा हुआ। जरा कब्र गहरी डालना, जिससे संगीत वापस न लौट आए।
भारत जीवन के साथ ऐसा व्यवहार कर रहा है, औरंगजेबी व्यवहार। जीवन को ऐसा गड़ाया है कि कहीं निकल न आए। जीवन का कोई संगीत मत सुनना, जीवन की कोई मुस्कुराहट मत देखना, जीवन का कोई सुख--नहीं, नहीं। जीवन का कोई आनंद-- नहीं, नहीं। जीवन में कुछ भी नहीं है, जो भी है--बुरा है। और जो अच्छा भी दिखाई पड़ता है, वह भी धोखा है। उसके पीछे भी बुरा ही छिपा होगा। इसलिए बचना, भागना, दूर हटना, और जीवन को गड़ा देना--तब मिलेगा मोक्ष, तब मिलेगा परमात्मा।
बहुत अदभुत परमात्मा है। अगर परमात्मा जीवन का इतना विरोधी है तो जीवन है ही क्यों? अगर परमात्मा को जीवन इतना बुरा मालूम पड़ता है तो जीवन के होने का वजूद क्या है? जरूरत क्या है? जीवन का होने का कारण क्या है? अगर परमात्मा दुश्मन है इस जीवन का तो खत्म क्यों नही कर देता? कौन कहता है उससे कि जीवन को चलाए? यह जीवन की इतनी बड़ी लीला जिस सृजन-स्रोत से चल रही है, जरूर वह इसके पक्ष में होना चाहिए। अन्यथा यह क्यों चलेगी। यह जो जीवन का इतना विस्तार है, फैलाव है, अगर यह जीवन के केंद्र से आकांक्षित न हो, तो क्यों चलेगा? क्यों फैलेगा? प्रयोजन क्या है?
नहीं, लेकिन परमात्मा तो जीवन के पक्ष में है। महात्मा जीवन के पक्ष में नहीं हैं, महात्मा जीवन-विरोधी हैं। और परमात्मा जीवन पर रोज नये-नये रूप, नये-नये फैलाव किए चला जाता है। परमात्मा थकता ही नहीं जीवन के विस्तार से। जीवन के सृजन से वह ऊबता नहीं। लेकिन महात्मा बहुत परेशान हैं। और महात्मा जीवन के विरोध में समझाए चले जा रहे हैं, समझाए चले जा रहे हैं। कोई उनकी समझ लेता है, ऐसा नहीं है। कोई उनकी मान ही लेता है, ऐसा नहीं है। कोई उनकी मानता नहीं, लेकिन फिर भी उनकी बातें मन को विषाक्त कर जाती हैं। जीवन की जड़ों को ढीला कर जाती हैं, मन को दो हिस्सों में तोड़ती हैं। फिर हम जीवन को भोगते भी हैं और भयभीत भी होते हैं। जीवन को भोगते भी हैं, और डरते भी हैं कि पाप हो रहा है।
बाप बेटे को गले भी लगाता है और सोचता है कि कैसे माया-मोह में पड़ रहा हूं? पाप लग रहा है, नरक का रास्ता बना रहा हूं। जो बाप अपने बेटे को छाती से लगाते वक्त यह भी जानता हो कि नरक का रास्ता बना रहा हूं, उस बाप ने अपने बेटे को कभी छाती से लगाया होगा? हड्डी से हड्डी लगी होगी, भीतर का कुछ भी नहीं मिला होगा। भीतर का कैसे मिल सकता है? पति जानता है कि पत्नी नरक का द्वार है, और उसी पत्नी को कह रहा है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। और भीतर एक स्वर, महात्माओं का स्वर भीतर बैठा हुआ है, कि कहां नरक के द्वार के प्रेम में पड़ रहे हो?

इस देश में कोई पति किसी पत्नी को प्रेम नहीं कर सकता है, क्योंकि वह नरक का द्वार है। (रिकार्डिंग ब्लैंक... ) प्रेम किया जा सकता है। प्रेम करेगा भी, प्रकृति प्रेम भी कराएगी। निसर्ग प्रेम में भी ले जाएगा, और महात्माओं के स्वर पीछे से गूंज रहे हैं, पार्श्वभूमि से उनकी आवाज आ रही है--सावधान, नरक के रास्ते पर जा रहा है। हाथ खींच भी रहे हैं, हाथ बढ़ा भी रहे हैं। भारत की पूरी प्रतिभा कांफ्लिक्ट में पड़ गई है, द्वंद्व में पड़ गई है। जिस तरफ हाथ बढ़ाते हैं, वहीं से दूसरा हाथ कहता है--खींच लो, पाप में पड़ रहे हो।
अगर ऐसी मनोस्थिति हो जाए किसी देश की तो उसकी प्रतिभा कैसे विकसित हो, कैसे सृजनात्मक हो? तब एक पाखंड पैदा होता है। तब हम जो कहते हैं वह नहीं कर पाते हैं, और जो करते हैं वह नहीं कह पाते हैं। फिर जीते हैं और तरह से, मानते हैं और तरह से, चलते हैं और तरह से, आंखें रखते हैं और तरह से; और सारा व्यक्तित्व खंड-खंड, सारा व्यक्तित्व डिसइंटिग्रेटिड--सब टूट-फूट हो जाता है।
मैंने सुना है, दिल्ली के एक म्यूजियम में अगर आप दिल्ली गए हों, नहीं
तो अखबार में तो फोटो देखे ही होंगे। वे तीन बंदरों की फोटो आपने जरूर देखी होगी, जिनको गांधीजी प्रसिद्ध कर गए। वे तीन बंदर मुंह पर हाथ लगाए हुए, कान पर हाथ लगाए हुए, आंखें बंद किए हुए--वे दिल्ली के एक म्यूजियम में तीनों बंदर बैठे हैं। दिन भर तो बेचारे लोगों की वजह से ऐसे सधे हुए बैठे रहते हैं कि लोग देखने आते हैं। रात जब दरवाजा म्यूजियम का बंद हो जाता है तो बंदर बंदर हो जाते हैं। सब छोड़-छाड़ देते हैं। फिर क्या गांधी की खाक फिकर करेंगे, गांधी की फिकर गांधी के पीछे चलने वाले आदमी नहीं करते। गांधी की पीठ हुई और सब बदल जाता है तो बंदरों का क्या भरोसा?
जैसे ही दरवाजा बंद होता है म्यूजियम के बंदर उछल-कूद करने लगते हैं।
सब उपद्रव करने लगते हैं। एक दिन रात में तीनों लड़ रहे हैं, एक-दूसरे की गर्दन दबा रहे हैं। एक बुड्ढे ने दरवाजा खोला, उसने कहाः यह तुम क्या कर रहे हो? तीनों बंदर चौंक गए। रात तो कोई कभी आता नहीं। उन्होंने कहाः आप कैसे बेवक्त आ गए हैं? देखने का समय तो दिन होता है, और दिन को हम हमेशा हमारी टेबल पर होते हैं, और ठीक पोजिशन में होते हैं, और ठीक आसन में बैठे रहते हैं। पर रात के लिए थोड़े ही ठेका ले रखा है, कम से कम रात को तो हमें छुट्टी दो। दिन भर तो हम मुंह पर हाथ लगाए-लगाए थक जाते हैं, कान से हाथ लगाए हुए हैं--बंदर हैं हम--और आंख से हाथ लगा कर बैठना। और दिन भर सोचते हैं कितनी मुसीबत होती होगी। तो रात तो छुट्टी दो, रात को तुम कैसे आ गए हो? और यह कोई वक्त है?
पर उस बुड्ढे ने कहा कि बकवास बंद करो, तुम पहचाने नहीं कि मैं कौन हूं? मैंने तुम्हें हिंसा सिखाई थी? तुम एक-दूसरे की गर्दन काट रहे हो, गालियां बक रहे हो? तब एक को शक हुआ कि यह बुड्ढा कहीं गांधी तो नहीं है? वह उचक कर जल्दी से अपनी मेज पर बैठ कर उसने आंखें बंद कर लीं। और उस बूढ़े आदमी ने कहा कि अब क्या होता है आंखें बंद करने से, हिंसा देख रहे थे, हिंसा में भागीदार थे। और आंख बंद किए हुए बंदर ने कहाः क्षमा करिए, मैं तो आंख बंद किए बैठा हूं। मुझे तो गांधी बाबा ने सिखाया है कि बुरी चीज देखनी नहीं चाहिए तो मैंने कुछ देखा ही नहीं। क्या हो रहा है, मुझे कुछ पता ही नहीं। बूढ़ा तो बहुत क्रोध से भर गया। उसने कहाः मैं अपनी आंख से देख रहा हूं कि तू भी लड़ रहा था, और अब तू कह रहा है कि देखा ही नहीं। तब तक दूसरा बंदर भी आकर बैठ गया और उसने कानों पर हाथ लगा लिए, और तीसरा बंदर भी छलांग लगा कर आ गया, उसने अपना मुंह बंद कर लिया है।
उस बूढ़े ने दूसरे बंदर से कहा कि सुनते हो, यह कितना सरासर झूठ बोल रहा है? तो दूसरे बंदर ने कहाः मैं तो कान पर हाथ लगाए हुए हूं, मुझे कुछ सुनाई भी नहीं पड़ रहा है। बूढ़ा तो बहुत हैरान हो गया! उसने तीसरे बंदर को हिलाया कि तू बोल ये दोनों झूठ बोल रहे हैं। उसने कहाः आप देखते हैं कि मैंने तो मौन का व्रत लिया हुआ है। बोल कर बता रहा है कि मैंने मौन का व्रत लिया हुआ है, कि मैं बोल नहीं सकता हूं। वह बूढ़ा क्रोध से दरवाजा बंद करके बाहर चला गया।

तीनों बंदर आपस में पूछने लगे कि हो न हो यह बूढ़ा गांधी होना चाहिए। लेकिन सुना हमने तो गांधी को गोडसे ने गोली मार दी, तब से हम निश्चिंत हो गए। सभी गांधीवादी निश्चिंत हो गए तो बंदरों का क्या निश्चिंत नहीं होना? मगर यह बुड्ढा कौन है? पता नहीं बुड्ढा कौन था? मुझे भी पता नहीं है। उन बंदरों को भी पता नहीं चल सका। पता नहीं कौन था? लेकिन तीनों बंदर सोचने लगे कि बिल्कुल गांधी जैसा मालूम पड़ता है, और उसी रोक-टोक से कहने लगा कि अहिंसा बरतो। लेकिन जब गांधी के मानने वाले, कुछ ही मानने वाले, कोई नहीं मानते तो हम क्या? हम तो कम से कम दिन भर मानते हैं। जब भी म्यूजियम खुला रहता है तब तक हम तो सधे बैठे रहते हैं।
यह जो दिन में एक शक्ल जब तक म्यूजियम खुला हो और रात में दूसरी शक्ल
जब म्यूजियम बंद हो--यह हम सबकी शक्लें हो गई हैं। बंदरों की नहीं, पूरे भारत के हर आदमी की शक्ल हो गई है। एक शक्ल है जो हमें शिक्षाएं दी गई हैं उनके अनुसार हमने ढाली हैं। और एक शक्ल वह है जो हमारा निसर्ग, जो हमारी प्रकृति हमसे पुकार करती है। और इन दोनों के बीच विरोध है। और भारत इस विरोध को हल नहीं कर पाया। इस विरोध को हल न कर पाए जो धर्म, जो दर्शन वह कूड़ा-कचरा है। क्योंकि असली सवाल यही है मनुष्य का, कि मनुष्य के भीतर जो निसर्ग है, जो प्रकृति है--उसके, और जो परमात्मा है--उसकेबीच में एक समाधान, एक सेतु, एक ब्रिज बनना चाहिए।
मनुष्य की प्रकृति और मनुष्य के अंतिम चरण परमात्मा के बीच, मनुष्य
के प्रथम चरण और मनुष्य की अंतिम उपलब्धि के बीच, मनुष्य के निकृष्टतम और मनुष्य के श्रेष्ठतम के बीच विरोध नहीं होना चाहिए--एक सेतु बनना चाहिए, एक ब्रिज बनना चाहिए कि मनुष्य एक-एक सीढ़ी निकृष्ट से उठे और श्रेष्ठ तक पहुंच जाए। लेकिन भारत इसको हल नहीं कर पाया है। भारत ने इसको हल किया ऐसे कि उसने निकृष्ट को कहा कि वह अलग है, और श्रेष्ठ अलग है। और दोनों के बीच खाई खड़ी कर दी। और आदमी दो हिस्सों में विभाजित हो गया। रहता तो निकृष्ट में है, दिखलाता श्रेष्ठ में है। और तब एक पाखंड सारे प्राणों को घेर लिया है।
अरनोल टाइंडी ने कहीं एक वक्तव्य में यह बात कही कि पश्चिम की जो संस्कृति है वह एक सेंसे कल्चर है, वह ऐंद्रिक संस्कृति है। उसकी इस बात को भारत के साधु-संन्यासियों ने फौरन पकड़ लिया। हम तो यहां इसी तैयारी में रहते हैं कि कोई किसी की निंदा करता हुआ दुनिया में कहीं मिल जाए, तो हम फौरन उसकी निंदा को पकड़ लें और कहें कि देखो, वे सब लोग ऐसे हैं। ताकि हमारे मन को तृप्ति मिले कि हम भी कुछ ज्यादा बुरे नहीं हैं। तो अरनोल टाइंडी ने इधर कहा कि सेंसे कल्चर है पश्चिम का, ऐंद्रिक संस्कृति है। सारे भारत के साधु-संन्यासी दोहराने लगे कि देखो पश्चिम की संस्कृति तो ऐंद्रिक संस्कृति है, और हमारी, हमारी आध्यात्मिक संस्कृति है।
मैं उनसे कहना चाहता हूं और अरनोल टाइंडी को भी कि तुमने आधी बात कह
कर गलती की। पश्चिम की संस्कृति सेंसेट है, ऐंद्रिक है, यह सच है; लेकिन पूरब की संस्कृति और भी बदतर है, वह हिपोक्रेट है, वह पाखंडी है-- आध्यात्मिक नहीं है। और मैं आपसे कहना चाहता हूंः ऐंद्रिक संस्कृति अगर ठीक से विकसित हो तो आध्यात्मिक हो भी सकती है, लेकिन पाखंडी संस्कृति किसी भी तरह विकसित ही नहीं हो सकती, आध्यात्मिक होना तो बहुत मुश्किल है। पाखंड का मतलब यह है कि जो हम हैं वह कुछ और है, और जो हम दिखलाते हैं
वह कुछ और है। पाखंड का यह मतलब है कि हम जो चाहते हैं वह कुछ और है, और जो हम बतलाते हैं लोगों को कि हम चाहते हैं--वह कुछ और है। हमारी दो शक्लें हैं। हमारे दो रूप हैं। और हर आदमी भलीभांति जानता है कि उसके दो रूप हैं। जब वह मुस्कुराता है तब पक्का नहीं है कि भीतर भी मुस्कुरा रहो हो, जब वह नमस्कार करता है तो पक्का नहीं है कि भीतर भी नमस्कार कर रहा हो। और जब वह कहता है कि आपसे मिल कर बहुत खुशी हुई, तो हो सकता है भीतर कह रहा हो कि इस दुष्ट की शक्ल सुबह से कहां दिखाई पड़ गई।
भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है। बाहर अहिंसा की बात है, और भीतर हिंसा उबाल ले रही है। तीन-चार हजार वर्षों से हम अहिंसा की बातें कर रहे हैं। लेकिन कितनी अहिंसा है हमारे पास? कितनी अहिंसा हो पाई है? कौन अहिंसक है?

अभी हिंदुस्तान पर हमला हुआ, चीन का या पाकिस्तान का, तो हमारी अहिंसा का कहीं भी पता नहीं चला। फिर खोजने से भी एक अहिंसक खोजना मुश्किल था। बल्कि जो बड़े-बड़े अहिंसक थे वे भी कहने लगे कि अब तो अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा करनी पड़ेगी। आश्चर्य! अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा करनी पड़ेगी? तब तो अहिंसा बड़ी कमजोर है, और हिंसा की रक्षा की उसे जरूरत पड़ती है?
हजारों साल से अहिंसा की बातचीत के बाद भी भीतर तो हिंसक आदमी मौजूद है। वह हिंसक आदमी भीतर से कहीं भी नहीं गया। और यह भी हो सकता है कि दूसरों के साथ हिंसा बंद कर दी हो, तो अपने साथ हिंसा शुरू कर दी हो। लेकिन हिंसा जारी रहेगी। हिंसा जारी है। बाहर हम सब बातें कर रहे हैं कि लोभ बुरा है, परिग्रह बुरा है। और भीतर, और भीतर यह सब चल रहा है। सब लोभ चल रहा है, सब परिग्रह चल रहा है। सारा, जिस-जिस बात की हमने निंदा की वह भीतर चल रही है। और बाहर हम निंदा भी जारी किए हुए हैं।
यह अगर दिखाई न पड़े तो इस देश के जीवन में क्रांति कैसे होगी? यह सत्य
तो देखना पड़ेगा कि कोई एक, एक भीतरी द्वंद्व है जो हमारे पूरे देश की प्रतिभा को दो हिस्सों में तोड़े हुए है, भीतर से दो हिस्सों में तोड़े हुए है। और उन दोनों हिस्सों के बीच तारतम्य खो गया है। उसके बीच कोई संबंध नहीं रह गया है। वे दोनों के बीच कोई मेल नहीं रह गया है। और यह समझ के बाहर हो गया है कि हम एक खंड से दूसरे खंड को कैसे जोड़ें? यह खंडितपन क्यों आया है? इसके खंडितपन के आने का बुनियादी कारण? बुनियादी कारण हमने जीवन और मोक्ष को दो विपरीत बातें मान रखी हैं। हमने जीवन और धर्म को दुश्मन बना रखा है।
जीवन और मोक्ष जब एक ही चीज का विस्तार होंगे, जीवन और धर्म जब एक ही बात के दो पहलू होंगे, जब एक ही काव्य की दो कड़ियां होंगी--जीवन और मोक्ष तब, तब हमारे व्यक्तित्व में इंटिग्रेटेड, एक योग, एक संश्लिष्ठ व्यक्तित्व, एक इकट्ठापन, खंड-खंड होना टूटेगा और हम अखंड हो सकेंगे।
और ध्यान रहे, जो व्यक्ति अपने भीतर अखंड नहीं हैं वह व्यक्ति अपने से
ही लड़ता है और मर जाता है। वह व्यक्ति कभी कुछ नहीं कर पाता। हम कहते हैं कि भारत कभी किसी से नहीं लड़ा, यह बात सच है। क्योंकि भारत को खुद से लड़ने से फुरसत मिले तो वह किसी और से लड़ने जाए। यह बात सच है कि भारत कभी किसी से नहीं लड़ा। आखिर किसी से लड़ने के लिए कुछ ताकत भी तो चाहिए, इधर हम अपने से ही एक-एक आदमी लड़ कर इस तरह नष्ट हो जाते हैं कि लड़ने लायक बाहर जाने का सवाल कहां है?
भारत की पूरी प्रतिभा आंतरिक युद्ध में संलग्न है। हम अपने से ही लड़ रहे हैं। हमारा ही एक हिस्सा दूसरे हिस्से से लड़ रहा है। जैसे मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाऊं। मेरा बायां हाथ, दायां हाथ लड़ने लगे तो कौन जीतेगा? बायां जीतेगा कि दायां जीतेगा? कोई भी नहीं जीतेगा। हां, एक बात तय है, दोनों में से कोई नहीं जीतेगा, मैं हार जाऊंगा। क्योंकि दोनों के लड़ने में मेरी शक्ति व्यय होगी। मैं नष्ट होऊंगा, मैं टूटूंगा और नष्ट हो जाऊंगा। हमने भारत की प्रतिभा को अंतर-खंडन में डाल दिया है। यह अंतर-खंडन एक मोक्ष की कल्पना से पैदा हुआ है। जो हम सोच रहे हैं सही है। सारे देश का प्रतिभावान आदमी जीवन को छोड़ कर भाग रहा है कि हमें मोक्ष जाना है। और जो जीवन में रह जाते हैं, वे बेचारे आत्मग्लानि अनुभव करते हैं। पछताते हैं कि हम कमजोर हैं, इसलिए हम जंगल नहीं भाग सक रहे हैं। नहीं तो कभी के हरिद्वार चले गए होते, ऋषिकेश चले गए होते, किसी आश्रम में भर्ती हो गए। हम जरा कमजोर हैं, हम जरा पापी हैं। लेकिन आशा है कि कभी मौका मिलेगाः इस जन्म में, अगले जन्म में--तो भागेंगे। जो भाग गए हैं, उनके पैर वे लोग छू रहे हैं--जो नहीं भागे हैं। भागे हुए लोगों के पैर छुए जा रहे हैं, पूजा की जा रही है कि आप बड़े धन्य हैं।
जो देश भगोडों को धन्य कहता होगा वह देश कभी भी कोई श्रेष्ठता को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि जब हम भागने को प्रतिभा बनाते हैं, जब हम भागने को प्रतिभा का स्वीकार देते हैं, जब हम भागने को रिकग्निशन देते हैं, और भागने को सम्मान और सत्कार देते हैं तो फिर ठीक है--लड़े कौन, जीए कौन, कौन खड़ा रहे? हिंदुस्तान में प्रथम कोटि का आदमी भाग जाता है,

द्वितीय-तृतीय कोटि के लोग काम चलाते हैं। सारी दुनिया में प्रथम कोटि का आदमी काम चलाता है, इसलिए हम दुनिया के किसी मुल्क के सामने खड़े नहीं हो सकते हैं। उनकी प्रथम कोटि की प्रतिभा फर्स्ट ग्रेड माइंड काम चलाती है, और हमारी द्वितीय और तृतीय कोटि की प्रतिभा काम चलाती है। प्रथम कोटि का आदमी तो जंगल भाग जाता है।
दुनिया में हमारे पिछड़ने का कारण? दुनिया में किसी दूसरे मुल्क के सामने प्रतियोगिता में खड़े न होने का कारण क्या है? कारण सिर्फ एक है-- उनकी प्रथम कोटि की प्रतिभा आइंस्टीन बनेगी, उनकी प्रथम कोटि की प्रतिभा न्यूटन बनेगी, उनकी प्रथम कोटि की प्रतिभा जीवन के संघर्ष में खड़ी होगी। हमारी प्रथम कोटि की प्रतिभा एक मठ बनाएगी, जगतगुरु हो जाएगी, इस तरह के कुछ काम करेगी--और हम सम्मान देंगे, और हम आदर देंगे। हमारा आदर और सम्मान लोगों को गलत दिशाओं पर ले जाता है।
यह ध्यान रहेः जब तक हम इस देश में... जो जी रहे हैं, और इस कला से जीवन
को जी रहे हैं कि जी भी रहे हैं और शांत हैं, जी भी रहे हैं और मुक्त हैं, जी भी रहे हैं और सुंदर हैं, जी भी रहे हैं और स्वस्थ हैं। जब तक हम ऐसे लोगों को आदर न देंगे, तब तक इस देश का जो गलत आदर बह रहा है वह अच्छे लोगों को गलत रास्तों पर ले जाएगा। कोटि प्रतिभाशाली लोगों को भटकाएगा, देश की प्रतिभा को खंड-खंड करेगा। और हम वह इकट्ठापन पैदा न कर पाएंगे जिससे ऊर्जा पैदा होगी, शक्ति पैदा होगी।
क्या कभी आपने यह सोचा है कि हम चार-पांच हजार वर्षों से सामूहिक रूप
से एक संदेश-गान, एक कोरस चल रहा है जीवन की निंदा का। हर चीज की निंदा करो। जो भी जीवन में है उसे कहोः बुरा है, पाप है, घृणित है, छोड़ने योग्य है--हर चीज। और फिर यह जारी रहे, और हमारे मन में यह बात बैठती चली जाए, बैठती चली जाए--भोजन करो तो मुश्किल है। स्वाद, स्वादपात! भोजन करेंगे। स्वाद स्वाभाविक है, लेकिन पात! भोजन कर रहे हैं, स्वाद ले रहे हैं, पात भी भोग रहे हैं। नरक जाने का रास्ता भी साफ दिखाई पड़ रहा है कि स्वाद ले रहे हो, बच्चू सम्हल कर लेना स्वाद। नरक का रास्ता तय हो रहा है, एक-एक सीढ़ी बढ़ रहे हो। तो स्वाद भी ले रहे हैं, और स्वाद जहर भी हुआ जा रहा है। एक साथ दोनों बातें हो रही हैं।
मैं एक बगीचे में था। एक संन्यासी मेरे साथ थे। बगीचे में अदभुत फूल खिले थे और मैं एक-एक फूल के पास रुकने लगा, और एक-एक फूल को देखने लगा। उन संन्यासी ने मुझसे कहाः आप भी क्या माया में पड़े हुए हैं? फूलों को देखते हैं! क्या रखा है इन फूलों में? मैंने उन संन्यासी को कहाः आप अपने रास्ते पर चले जाएं, मुझे फूलों की आवाज ज्यादा परमात्मा की आवाज मालूम पड़ रही है, बजाय आपकी आवाज के।
फूल परमात्मा के ज्यादा निकट हैं। फूल से जो प्रकट हो रहा है वह कोई
भी नहीं है, सिवाय परमात्मा के। वह जो फूल के रंग में है, वह भीवही है; पक्षी के गीत में है, वह भी वही है। लेकिन महात्मा कह रहा हैः सब बेकार है, सब असार है। सब छोड़ो, सबसे भागो। भाग कर जाओगे कहां? भागना कहां है, भाग सकते कहां हो? बस एक ही रास्ता है कि मर जाओ।
तो भागने का अर्थ भी असल में ग्रेजुअल डेथ है--धीरे-धीरे मौत। जीवन से छोड़ो धीरे-धीरे साथ, जितना साथ छूटेगा उतने मरते चले जाओगे। मरने की तैयारी करो। मरते जाओ, मरते जाओ, और जीवन से सब तरफ से साथ छोड़ दो, सब तरफ से जड़ें उखाड़ लो, सूख जाओ और मर जाओ।
यह हमने धर्म बनाया हुआ है!
फिर जो आदमी जितना सूख जाए, हम कहेंगे उतना महातपस्वी थे। जो आदमी जितना मुरझा जाए, हम कहेंगे उतना संन्यासी थे। जो आदमी जीते जी जैसे लाश और मुर्दा दिखाई पड़ने लगे, हम उतनी ही पूजा करेंगे।
गलत चल रही है यह पूजा, गलत स्थान पर चल रही है। इसलिए देश उदास होता गया है, विरक्त होता गया है, रिक्त होता गया है, मन तिक्त होता गया है, सब चीजों पर उदासी छा गई है, धूल छा गई है--न फूल अच्छे हैं, न संगीत अच्छा है, न चांद-तारे अच्छे हैं, न गीत अच्छे हैं, कुछ भी अच्छा नहीं है। अच्छा सिर्फ एक काम है कि भागो और मरो, भागो और मरो। ऐसा अगर भाव हो तो इसका क्या

अर्थ है? इसका अर्थ है कि पूरे देश को कोई सुसाइडल हवा, कोई आत्मघाती हवा पकड़े हुए है। पूरे देश में जैसे एक पागलपन छा गया है मरने का। और जब सबको छाया हो एक ही पागलपन तो दिखाई नहीं पड़ता। बहुत मुश्किल होता है दिखाई पड़ना। बहुत कठिनाई होती है पर्दे फाड़ कर देखने में जब सबको एक ही बीमारी छा गई हो।
अगर हम सारे यहां बैठे लोग पीलिया के बीमार हो जाएं तो हमें सब चीजें पीली दिखाई पड़ेंगी, और किसी को भी शक नहीं होगा कि चीजें पीली हैं या नहीं। क्योंकि पड़ोस वाले को भी पीली दिखाई पड़ती हैं, उसके पड़ोस वाले को भी पीली दिखाई पड़ती हैं। जब सभी को पीली दिखाई पड़ती हैं तो अगर कोई एक आदमी ठीक आंख वाला आ जाए और कहे कि मित्रो, आप गलती में हैं, चीजें सफेद हैं। तो हम सब उसको पकड़ लेंगे, और कहेंगे कि इसकी आंखें मालूम होती है खराब हो गई हैं, चलो किसी डाक्टर से इलाज करवा लेते हैं। क्योंकि चीजें तो पीली हैं, क्योंकि हम सबको चीजें पीली दिखाई पड़ती हैं। लेकिन हमें पीली दिखाई पड़ना किसी गहरे चश्मे के कारण हो सकता है। हजारों साल से हमें जीवन-विरोधी बातें सिखाई जा रही हैं। इसलिए चीजें हमें पीली दिखाई पड़ रही हैं, मुर्दा दिखाई पड़ रही हैं। अब अगर कोई कहे भी तो उसकी बात समझ के बाहर मालूम पड़ती है।
मैंने सुना है कि एक गांव में ऐसा हुआ था एक दिन एक जादूगर आया है, और कुएं में आकर उसने एक मंत्र फेंक दिया और कहा कि इस कुएं का पानी जो भी पीएगा, वह पागल हो जाएगा। मजबूरी थी, दो ही कुएं थे गांव में। एक गांव का कुआं, एक राजा का कुआं। तो गांव भर के लोगों ने पानी पीआ, सांझ तक पागल हो गए। राजा भर बचा। राजा बहुत खुश हुआ। सांझ को अपनी छत पर खड़ा है अपने वजीरों और अपनी पत्नियों के साथ, और कह रहा है कि धन्यभाग हमारे कि हमारा अलग कुआं था, नहीं तो आज हम भी पागल हो जाते। लेकिन तभी आस-पास में शोरगुल बढ़ने लगा, राजा ने पूछा, काहे का शोरगुल है? मंत्री नीचे गए। पता चला कि महाराज बहुत मुसीबत है, सारे गांव में यह खबर फैल गई है कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। गांव पागल हो चुका है, राजा भर बचा था। अब पागलों के बीच में न पागल होना इतना कष्टपूर्ण है, जितना न पागलों के बीच में पागल होना कष्टपूर्ण नहीं है।
राजा ने कहाः क्या मतलब! हम पागल हो गए हैं? कौन कहता है यह? वे सब पागल हो गए हैं। वजीर ने कहाः लेकिन समझाओगे किसको? पहरेदार भी पागल हो गए हैं, सैनिक भी पागल हो गए हैं, अधिकारी भी पागल हो गए हैं, सब पागल हो गए हैं--समझाओगे किसको, सुनेगा कौन? राजा ने कहाः यह तो बड़ी मुश्किल है। लेकिन तभी महल के आस-पास लोग मशालें लिए आ गए, और वे चिल्ला रहे हैं कि राजा पागल हो गया है। हम ऐसे पागल राजा को एक क्षण बरदाश्त नहीं करेंगे, हम ठीक राजा को सिंहासन पर बैठाएंगे। राजा ने कहाः अब क्या होगा? क्या करूं? वजीर ने कहाः आप भागिए, मैं उन्हें रोकने की कोशिश करता हूं। आप पीछे से जाकर उस कुएं का पानी जल्दी से पीकर वापस आ जाइए।
राजा ने कहाः क्या कहते हो, क्या मैं भी पागल हो जाऊं? वजीर ने कहाः देर मत करिए, नहीं तो मरना पड़ेगा। अगर बचना है तो पागल हो जाओ। वह राजा भागा, वह उस कुएं का पानी पी रहा है, जान रहा है कि मैं पागल हुआ जा रहा हूं, लेकिन कोई रास्ता नहीं है। वह पानी पीकर वापस लौटा, उस दिन उस गांव में बड़ा जलसा मनाया गया। सारे गांव में झांझ-मंजीरे पिटे, मंदिरों में घंटाल बजे, सारे गांव में दीये जले, और सारे गांव के लोगों ने भगवान को धन्यवाद दिया, तेरी बड़ी कृपा है! हमारे राजा का दिमाग ठीक हो गया। क्योंकि अब राजा भी कूद रहा था, चिल्ला रहा था, नंगा फिर रहा था, कपड़े फेंक दिए थे। अब राजा ठीक हो गया था, पागलों की बस्ती में। लेकिन दिखाई पड़ना मुश्किल है उसमें। हजारों साल तक अगर कोई एक बात हमारे चारों तरफ मंडराती रही हो, घूमती रही हो तो वह हमारे खून और हड्डी का हिस्सा हो जाती है। मोक्ष की कामना इस देश के खून और हड्डी में घुस गई है। और जीवन की कामना उसी मात्रा में क्षीण हो गई हैं, मृतप्राय हो गई है।
लेकिन जीवन ही सत्य है। और जीवन से अतिरिक्त कोई मोक्ष न है, और न सत्य है। हां, यह बात सच है कि अगर कोई इस जीवन को पूरी तरह जीए--पूरे आनंद में,

पूरी प्रार्थना में, परमात्मा के पूरे अनुग्रह में; और अगर जीवन के इंच-इंच को जाग कर जीए--होश से जीए, आनंद से जीए; और जीवन की प्रत्येक चीज को ऐसे जीए, जैसे परमात्मा को ही जी रहा है; श्वास भी ऐसे ले, जैसे परमात्मा ही भीतर गया और बाहर आया; भोजन भी ऐसे करे, जैसे परमात्मा का ही भोजन हो रहा है; रास्ते पर चले भी ऐसे, जैसे परमात्मा ही चारों तरफ है। चारों तरफ जो लोग दिखाई पड़ें उनकी आंखों में भी परमात्मा की झलक देखे, वृक्ष के फूल में वह खिलता मालूम पड़े, सागर की लहर में वह नाचता मालूम पड़े, चांद की किरणों में वह उतरता हुआ मालूम पड़े, चारों तरफ परमात्मा घेर ले, जीवन ही परमात्मा हो जाए--तो निश्चित ही मोक्ष उपलब्ध होता है।
लेकिन वह मोक्ष मृत्यु वाला मोक्ष नहीं है, वह मोक्ष मरने वाला मोक्ष नहीं है। वह मोक्ष जीवंत है, लिविंग है। वह जीवन का ही परिपूर्ण विस्तार है, वह जीवन का ही पूरा उदघाटन है। एक ऐसा मोक्ष जो जीवन का ही उदघाटन है। अगर ऐसी प्रतिभा को हम मुक्त न कर सकें तो इस देश का कोई भविष्य नहीं हो सकता। इसलिए तीसरा सूत्र आपसे कहता हूंः मोक्ष से मुक्ति।
यह बड़ा अजीब लगेगा, मोक्ष से मुक्ति? जीवन से प्रेम, मोक्ष से मुक्ति है। और यह मत सोच लेना कि मैं कोई मोक्ष-विरोधी हूं। सच तो यह है कि जिन्होंने जीवन से विपरीत मोक्ष बताया, वे ही मोक्ष-विरोधी हैं। उन्होंने ही जीवन को मोक्ष तक पहुंचने से रोक दिया है। उन्होंने बाधा डाल दी है। उन्होंने रास्ता भटका दिया है नदी का। वे नदी को मरुस्थल में मोड़ कर ले गए हैं। और जो नदी सागर तक अपने आप पहुंच जाती, किसी को पहुंचाने की जरूरत न थी। नदी को सागर तक पहुंचाने के लिए किन्हीं इंजीनियरों की जरूरत नहीं होती। लेकिन नदी को अगर सागर तक जाने से रोकना हो तो फिर इंजीनियरों की जरूरत पड़ती है, यह तो आपको मालूम है। इंजीनियरों की जरूरत पड़ती है नदी को अगर मरुस्थल में ले जाना हो। नदी को अगर सागर तक पहुंचने से रोकना हो तो इंजीनियर की जरूरत पड़ती है, और अगर नदी को सागर में जाने देना हो तो किसी इंजीनियर की कोई जरूरत नहीं है। नदी सहज ही(-- 47 : 46.अस्पष्ट) सागर तक पहुंच जाती है।
जीवन तो मोक्ष तक पहुंच सकता है, लेकिन पंडितों की कृपा चाहिए। वे पंडित, वे इंजीनियर, वे मोक्ष के इंजीनियर... वे पंडित जीवन के रास्ते को मरुस्थल में भटकाते हैं। और जितना जीवन मरुस्थल में भटकने लगता है उतना ही पंडितों का व्यवसाय जोर से चलने लगता है। क्योंकि जितना जीवन दुखी होता है, उतना ही आदमी पूछता है कि मार्ग बताओ। पहले मार्ग भटकाओ, नहीं तो मार्ग पूछने कौन आएगा?
सच तो यह है कि अगर दुनिया का पंडितों से छुटकारा हो जाए और एक-एक आदमी सहज वृत्ति से जीवन के आनंद को जीने लगे, तो मुश्किल से कुछ लोग बचेंगे जो मोक्ष तक न पहुंचे। अधिकतम लोग मोक्ष तक पहुंच जाएंगे। जीवन की सहज धारा मोक्ष की तरफ है। जीवन की सहज धारा परमात्मा की तरफ है। लेकिन महात्मा बीच में खड़ा हुआ है, वह कहता हैः कहां जा रहे हो? अगर उसकी मानो तो मुसीबत है, उसकी न मानो तो मुसीबत है।
मैंने सुना है, एक गांव में एक उपदेशक कुत्ता था। बड़ा खतरनाक कुत्ता, देखो कुत्ता वैसे ही खतरनाक होता है, और फिर उपदेशक। जैसे कि नीम पर चढ़ा हुआ करेला। कुत्ता वैसे ही दिन-रात चिल्लाता था, फिर वह उपदेशक था तो और मुसीबत। वह सुबह से निकलता था और जहां भी कोई कुत्ते मिल जाएं, दो-चार कुत्ते मिल जाएं उनको फौरन समझाना शुरू कर देता था। समझाता क्या था? समझाता वह यह था कि कुत्तों की जाति का बड़ा पतन हो गया है, और हम सब रास्तों से भटक गए हैं, पर हम सब गलत काम कर रहे हैं। कुत्ते पूछते, कौन सा गलत काम? तो वह कहता कि देखो, हमारे ऋषि-मुनियों को देखो! पहले जो हो चुके हैं, वे बिल्कुल मौन रहते थे, कभी भौंकते नहीं थे। और तुम दिन-रात भौंकते हो, यह भौंकना ही पाप है।
अब बड़ी मुश्किल हो गई। कुत्ता न भौंके तो मुसीबत, और भौंके तो पाप है।
अब कुत्ता भौंकेगा ही। नहीं भौंकेगा तो जान घुटती है भीतर, भौंकता है तो मुसीबत होती है। अब कुत्ता यानी भौंकना।

कुत्ते सुनते और कहते कि बात तो आप ठीक कहते हैं, लेकिन बड़ी कठिन मालूम होती है। हां, कुछ बहुत ही संकल्पवान लोग होंगे वे साध लेते होंगे, हम तो साधारण कुत्ते हैं। हमसे साधने में मुश्किल होती है, लेकिन फिर भी सुनते हैं। और एक बात पक्की थी कि वह जो उपदेशक कुत्ता था वह कभी नहीं भौंकता था, इसलिए कोई एतराज भी नहीं उठा सकता था। कारण असल में दूसरा था। वह दिन भर में बोल-बोल कर इतना थक जाता था कि भौंकने का उपाय नहीं था। भौंकने के लिए ताकत चाहिए। और भौंकने का काम बोलने से ही हो जाता था। लेकिन दिन-रात समझाते-समझाते गांव के कुत्ते परेशान हो गए और एक दिन अमावस की रात थी, गांव के कुत्तों ने कहा, कितने दिन से हमारा नेता हमें समझा रहा है, हम उसकी मानते ही नहीं। नेता हमेशा समझाते हैं, मानता कौन है? और ध्यान रखना, जिस दिन मान लोगे उसी दिन नेता की मौत हो जाएगी। नहीं मानते हो इसलिए नेता जिंदा है। वह समझाता चला जाता है, तुम मानते नहीं। वह समझाता चला जाता है... ।
उन कुत्तों ने कहा कि बहुत बेचारा कष्ट उठाता है, बड़ा पुराना नेता है हमारा, इसकी बात मान ही लेनी चाहिए। आज की रात तो कम से कम हम कसम खा लें कि कोई नहीं भौंकेगा। अमावस की रात थी। सारे कुत्ते चुप पड़ गए एक-एक कोने में, बड़ी मुश्किल थी यह बात। बड़ी तपश्चर्या, साधना, योगासन लगाना पड़ा होगा, तब कहीं चुप हो सके होंगे। मगर अपने गले को घोंटे हुए पड़े हैं। बड़े टेम्टेशंस आने लगे, बड़ी उत्तेजनाएं आने लगीं। कहीं कोई पुलिसवाला रास्ते से निकल गया। अब पुलिसवाले को देख ले कुत्ता, और न भौंके! मगर संयम साधा उन्होंने, बहुत संयम साधा, बड़ी हिम्मत की, बड़ी मुश्किल की, जैसा उपवास वगैरह के दिन सब लोग साधते हैं संयम। उसी तरह का संयम उन पर पड़ गया। लेकिन प्रतीक्षा करने लगे कि आखिर रात तो बीतेगी, सुबह तो होगी। रात भर की तो कसम खाई है। सुबह भौंक लेंगे, इकट्ठा भौंक लेंगे। मन में कल्पना करने लगे कि सुबह भौंकने में कैसा-कैसा मजा आएगा। वे जो लोग उपवास करते हैं, वह पता है उन्हें कि सुबह भोजन करने में कैसा मजा आएगा। (अस्पष्ट 52 : 10--) वे कुत्ते बेचारे! लेकिन सुबह की आशा में अपने मन को समझाए संतोष से रहे।
उपदेशक कुत्ता निकला अपने वक्त पर उपदेश देने। लेकिन आज गांव में सन्नाटा है, कोई कुत्ता भौंकता ही नहीं। उपदेशक कुत्ते ने कहाः हो क्या गया है? क्या सारे, सब कुत्ते मर गए? मेरा क्या होगा? लेकिन देखा कि कुत्ते गली-कूचों में दुबके पड़े हुए हैं। अब उपदेशक जब कोई भौंक ही नहीं रहा है तो क्या करे? रात बारह बज गए, आज पहली दफा उपदेशक के गले में जोर की खराश उठी। इतनी देर तो बोल नहीं पाया, और बड़ी घबड़ाहट हुई उसको। भौंकने का मन होने लगा। उसने कहा, यह भी क्या मामला है, आज जब कोई नहीं भौंक रहा तो मेरा भौंकने का मन क्यों हो रहा है? फिर तो बहुत मुश्किल हो गई, कोई समझाने को नहीं मिला, कोई समझने को नहीं मिला, फिर क्या करे? फिर उसे खयाल आया कि किसी एकांत सी गली में जाकर जोर से भौंक ही लेता हूं। वह भौंका एक गली में जाकर। जैसे ही भौंका, सारे कुत्तों का संयम टूट गया। उन्होंने सोचाः किसी एक ने गद्दारी कर दी, उन्हें क्या पता कि नेता ही गद्दारी कर रहा है। हमेशा नेता ही गद्दारी करता है। लेकिन नेता होशियारी से गद्दारी करता है, पता भी नहीं चल पाता। फंसता अनुयायी है, जब भी फंसता है अनुयायी ही फंसता है। उन्हें क्या पता, वे समझे कि हमारे बीच से किसी ने संयम तोड़ दिया। क्योंकि यह तो वे सोच ही नहीं सकते थे कि उपदेशक कुत्ता और ऐसा कभी करेगा! वह तो कभी भौंका ही नहीं। सारे कुत्ते भौंकने लगे, जब उन्होंने देखा कि एक ने तोड़ दिया तो हम भी क्यों परेशान हों। सारे गांव में शोरगुल मच गया और उपदेशक कुत्ता वापस लौट आया, और उसने कहाः दोस्तो, इसी वजह से हमारा पतन हो रहा है। यह भौंकना बहुत गलत है, यह कुत्तों की जाति का अपमान है। जब तक तुम भौंकते रहोगे तब तक कुत्तों की कभी कोई इज्जत नहीं होगी। भौंकना बंद करो! किसी को क्या पता कि उस रात क्या घटना घटी?
जीवन को सहज, बिल्कुल सहज... जिसको हम कहें जैसा जीवन है अगर वैसा जीवन
को चुपचाप रहने दिया जाए तो जीवन सहज ही वहां पहुंच जाता है--जहां प्रभु है, वह उस मंदिर में पहुंच जाता है। लेकिन बहुत असहज किया गया है। इतना सिखाया गया है, इतना सिखाया गया है कि सब चक्कर हो गया है। उस चक्कर में

पूरी मनुष्य-जाति की चेतना सहज जहां जा सकती है, वहां नहीं जा पा रही है। और जहां जा ही नहीं सकती, वहां जाने की व्यर्थ चेष्टा कर रही है।
और इस व्यर्थ चेष्टा में भारत अग्रणी है। इस मोक्ष की कामना में भारत प्रथम खड़ा है। और इसलिए जीवन की दौड़ में भारत अंतिम हो गया है। मोक्ष की कामना में प्रथम है खड़ा, इसलिए जीवन की दौड़ में अंतिम हो गया है। अगर जीवन की दौड़ में हमें प्रथम खड़े होना हो तो यह मरने की कामना छोड़ देनी चाहिए। धर्म का अर्थ मेरी दृष्टि में जीवन को मोक्ष बनाना है। धर्म का अर्थ मेरी दृष्टि में जीवन की क्षुद्रतम वस्तु को श्रेष्ठतम की गरिमा से मंडित करना है। क्षुद्रतम को, अत्यंत क्षुद्र को श्रेष्ठ की गरिमा से मंडित करना है, अत्यंत क्षुद्र को--खाना खाने को, कपड़ा पहनने को, उठने-बैठने को गरिमा से भर देना है, पूजा और आराधना की गरिमा दे देनी है। जीवन का सामान्य से सामान्य क्रम परमात्मा की प्रार्थना बन सके, जीवन का विरोध नहीं। और हम धीरे-धीरे बहते हुए किसी दिन उस क्षण को उपलब्ध हो जाएं जहां जीवन मुक्ति बन जाता है, जहां जीवन बंधन नहीं। जहां प्रकृति का द्वार परमात्मा पर खुल जाता है, जहां शरीर बाधा नहीं है--मार्ग है। जहां संसार मोक्ष से उलटा नहीं है। जहां जान लिया गया है, देख लिया गया है, वहां संसार भी मोक्ष है।
यह हो सकता है। और यह हो सके तो जीवन में क्रांति आ सकती है।
इन तीन दिनों में ये तीन सूत्र मैंने कहेः अतीत से मुक्ति, विश्वास से मुक्ति और मोक्ष से मुक्ति। जीवन के द्वार पर प्रवेश के लिए तीन सीढ़ियां। लेकिन मेरी बात को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है। मेरी बात को सोचना, विचारना, खोजना, प्रयोग करना। हो सकता है मेरी बात गलत हो, हो सकता है सही हो। मैं कौन हूं, कहूं कि सही है कि गलत है? उसकी जांच-परख आप करना। हो सकता है उस जांच-परख में कुछ सत्य का कण दिखाई पड़ जाए, तो वह कण आपके जीवन में क्रांति भर सकता है।
और एक छोटी सी क्रांति की किरण आ जाए तो आज नहीं कल, पूरे जीवन में क्रांति का सूरज भी उतर आता है। एक दीया जल जाए, फिर सूरज तक पहुंचने में बहुत कठिनाई नहीं है। क्योंकि जो दीये में छिपा है छोटे रूप में, वही सूरज में बड़ा होकर प्रकट हुआ है। लेकिन अंधकार से भरे हुए हैं हम। पर एक ही दीया में, एक ही किरण में... । और ये तीन सूत्रों से विपरीत जो चल रहे हैं, उनके जीवन में वह दीया पैदा नहीं हो सकता है।

मेरी बातों को इन दिनों में इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।